

# धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका

[ पुष्प - तृतीय ]



वैज्ञानिक धर्मचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव

# धर्मदर्शन विज्ञान प्रवेशिका

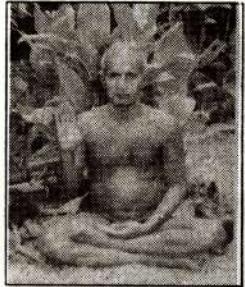
[ पुष्प - तृतीय ]

द्रव्यदाता श्रीपाल जैन सपरिवार वैज्ञानिक संगोष्ठी में झंडारोहण करते हुए



वैज्ञानिक हण्डु इण्डियन एसोसिएशन (१)  
लेखक  
वैज्ञानिक एटीएलपी इण्डियन एसोसिएशन समाज आ  
वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी जी गुरुदेव

# आशीर्वाद



विशेष प्रसन्नता की बात है कि बात है कि बालकोपयोगी छोटी-छोटी पुस्तके उनके शिक्षण के लिए लिखकर छप रही हैं, इन पुस्तकों के लेखक आचार्य कनकनंदी जी हैं, वे विशेष परिश्रम कर रहे हैं, उन पुस्तकों से बालक विशेष शिक्षा प्राप्त करेंगे व नैतिक शिक्षा प्राप्त करेंगे। वर्तमान में बालकों पर संस्कार डालना परमावश्यक है, उनको धार्मिक ज्ञान प्राप्त होना जरुरी है। आगे जाकर बच्चों पर ही धर्म का भार है, उन्होंने को धर्म चलाना है, उनको शिक्षित करना परम आवश्यक है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए 'धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका' तैयार की गयी है। आशा है आप अवश्य लाभान्वित होंगे। लेखक व प्रकाशक एवं द्रव्यदाता और ज्ञान प्राप्त करने वाले बच्चों को मेरा आशीर्वाद।

गणधराचार्य कुन्दुसागर

## द्रव्यदाता

श्रीमती कमला जैन धर्मपत्नी श्रीपाल जैन तथा सुपुत्र अनिल,  
सुनील, सुबोध, प्रमोद, राजेश जैन  
श्री कमल निकेतन, L3/67 जयश्री कॉलोनी, धूलकोट के पीछे,  
उदयपुर (राज.)

फोन नं. : 290298, 292262, Fax : 0294-490298  
प्रतिष्ठान (1) मेसर्स बारटल एन्टरप्राइज़ेस,  
(2) मेसर्स उदयपुर मिनरल इण्डस्ट्रीज़  
(3) मेसर्स उदयपुर ट्रेडिंग कंपनी  
(4) मेसर्स जैन हार्डवेयर एण्ड एजन्सीज  
(5) मेसर्स उदयपुर एन्टरप्राइज़ीस

फोन नं. : 490301, 490814, 412683, 413284

# शुभाशीर्वाद



विश्व में सर्वथ्रेष्ठ प्राणी मनुष्य है, क्योंकि मानव अपने विवेक, पुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान से स्वयं को सुसंस्कृत करके उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच सकता है। केवल बड़ी-बड़ी अद्वालिकायें, भोगोपभोग की सामग्रियों की उपलब्धि से कोई भी समाज, धर्म, राष्ट्र महान् नहीं बन सकता है। समाजादि को महान् बनाने के लिए महान् व्यक्तित्व वाला मानव चाहिए। क्योंकि महान् व्यक्तियों की समिष्टि

स महान् समाज बनता है एवं महान् समाज के समूह से महान् राष्ट्र बनता है। महान् राष्ट्र के समूह से महान् अखिल मानव समाज (पृथ्वी/विश्व) का संगठन होता है। इसलिये व्यक्ति निर्माण ही समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र का निर्माण है। अभी देश, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र के निर्माण की बुलन्द आवाज हर क्षेत्र से आ रही है परन्तु मानव निर्माण की ओर किसी का भी विशेष लक्ष्य नहीं है। अतः देशादि को योग्य, प्रगतिशील, सुसंस्कृत बनाना है तो पहले व्यक्ति-निर्माण के कार्य को प्रथम एवं प्रधान स्थान देना चाहिये। जैसे-दीपक स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित कर सकता है वैसे ही मनुष्य स्वयं सुसंस्कृत, आदर्शवान होकर दूसरों को सुसंस्कृत-आदर्श बना सकता है। आइये, आगे बढ़ें! पहले स्वयं को सुसंस्कृत करने के लिए मानव सुसंस्कृत बने, इस उद्देश्य से हमने इस पुस्तक की रचना की है। यदि एक भी महानुभाव, बालक इसको पढ़कर अपने जीवन को आदर्श बनावे तो मेरा पुरुषार्थ सफल होगा।

जैसे बीज भविष्यत् कालीन अंकुर, वृक्ष है, उसी प्रकार आज का बालक भविष्य का नागरिक एवं राष्ट्र नायक है अर्थात् आज का बालक कल का पालक है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि-

*Child is the father of man.*

बच्चा मनुष्य का पिता है। इसका भावार्थ यह है कि बच्चा मनुष्य समाज का जनक, महत्वपूर्ण इकाई, कर्णधार, भविष्य की धरोहर, उन्नायक है। इसलिये बालकों को सभ्य, सुसंस्कृत उन्नत बनाना है। इसलिए सर्व उन्नति के मूल कारण

स्वरूप बालकों को सभ्य, विनयशील, सुसंस्कृत, ज्ञानी, धीर-वीर, देशभक्त, कर्तव्यनिष्ठ, अनुशासन - प्रिय, समयानुबद्ध, देव-शास्त्र गुरु-भक्त, माता-पिता के आज्ञाकारी, त्यागी, धर्मपरायण बनाना, माता-पिता, अभिभावक, गुरुजन एवं राष्ट्र के सर्वोपरि नैतिक उद्देश्य होना चाहिए। इसी उद्देश्य को लेकर मैं बाल्यावस्था से ही बच्चों को महत्व देता आया हूँ। विद्यार्थी अवस्था में मैं खुद पढ़ता था एवं अन्य विद्यार्थियों को निःशुल्क ट्यूशन पढ़ाता था। इसी प्रकार साधु जीवन में भी बच्चों को पढ़ाता हूँ, उनके लिए शिविर लेता हूँ, प्रोत्साहन के लिए पुरस्कार भी देता हूँ। इतना ही नहीं, बच्चों को प्रायोगिक उत्साह देने के लिए एवं आगे बढ़ाने के लिए उनसे ही पड़गहता हूँ उनसे ही पूजा करवाता हूँ व आहार लेता हूँ।

आधुनिक बच्चों को आधुनिक परिवेश में शिक्षा देने के लिए, शिविर में प्रशिक्षण देने के लिए, धार्मिक स्कूल में पढ़ाने के लिए सरल, तुलनात्मक, वैज्ञानिक कारण सहित इस “धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका” पुस्तक की रचना की गई है। वस्तुतः यह पुस्तक “धर्म ज्ञान एवं विज्ञान” का परिवर्तित-परिवर्धित नवीन षष्ठ्य संस्करण ही है। “धर्म ज्ञान एवं विज्ञान” को जैन-अजैन, शिक्षित-व्यक्तियों द्वारा अधिक पसन्द करने के कारण उसका अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है। उसका नाम “PHILOSOPHY OF SCIENTIFIC RELIGION” है। उस ‘धर्म, ज्ञान एवं विज्ञान’ से बहु अंश लेकर बच्चों के योग्य कुछ अन्य विषय जोड़कर, इस पुस्तक का नवीनीकरण किया गया है। इस पुस्तक के कार्य में प्रेम जैन, जितेश जैन, संगीता जैन का भी योगदान रहा। सबकी बुद्धि उत्तरोत्तर धर्म में वृद्धि हो, स्व-पर, देश-जाति, इहलोक-परलोक में उन्नति करते हुए शाश्वतिक मोक्ष-सुख प्राप्त करें इन भावनाओं के साथ—

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामय।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवतु ॥

‘बच्चे हैं देश की जान, शिक्षा ही है उनकी शान।’

आचार्य कनकनंदी



## आचार्यश्री कनकनंदी विरचित साहित्य

भारतीय वाङ्मय के प्रणयन में श्रमण-परम्परा का विशेष योग रहा है। आचार्य कुन्दकुन्द एवं उमास्वामी से अद्यावधि जैनाचार्यों ने लगभग सभी भारतीय भाषाओं में सभी विषयों पर साहित्य निर्माण किया। जैनाचार्यों ने अपनी आत्म-साधना में रत रहते हुए लोकोपकारी ग्रन्थों का निर्माण किया।

इसी परम्परा में परम पूज्य गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी महाराज के संघस्थ श्री कनकनंदी जी महाराज श्री विशाल परिमाण में साहित्य-सृजन कर मां भारती के भण्डार की श्री वृद्धि कर रहे हैं। पूज्य आचार्य श्री अपने अनवरत ज्ञानाभ्यास से अभीक्षण ज्ञानोपयोगी बने हैं। वे तत्त्ववेत्ता वैज्ञानिक हैं। आपका अध्ययन बहुआयामी है, जिसमें ज्ञान-विज्ञान, धर्म, संस्कृति, दर्शन, जैन साहित्य के चारों अनुयोगों पर आपका समान अधिकार है। आपका अध्ययन गम्भीर है, आप सूक्ष्म दृष्ट्य हैं। तल स्पर्शी अध्ययन आपके साहित्य का प्रमाण है। आपके प्रवचन एवं ग्रन्थों को सुन-पढ़ कर गृहस्थ, साधु-साध्वी, विद्वान्, शोधार्थी आपसे उपकृत, प्रभावित एवं नतमस्तक रहते हैं। आपका समग्र साहित्य सर्वजन हिताय सिद्ध होता है।

आचार्य श्री सत्य से साक्षात्कार कर उससे प्राप्त नवनीत को अपने प्रवचनों एवं ग्रन्थों में लोकहिताय परोसते हैं। जिसका रसास्वादन कर भानव मात्र अपना हित सम्पादित कर सकता है। इन ग्रन्थों में अनेक शंकाओं एवं समस्याओं का समाधान है। समग्र साहित्य विविध ज्ञान-विज्ञान के अंगोपांगों एवं जीवन निर्माण की सार्थक सूक्तियों से अनुप्राणित है।

आपकी ‘अनेकान्त दर्शन’ एवं ‘विश्व विज्ञान रहस्य’ पुस्तकें दार्शनिक जगत् की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। सद्यः प्रकाशित ‘विश्व विज्ञान रहस्य’ में आपने न केवल जैन दर्शन अपितु इतर दर्शनों में तुलनात्मक पक्ष को प्रस्तुत करते हुए विश्व संरचना की तात्त्विक मीमांसा प्रभावी रूप में प्रस्तुत की है। इस सम्पूर्ण पुस्तक में दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, भूगोल-खगोल, जीव आदि का अद्यतन अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह ग्रन्थ धर्म, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान में अनुसंधित्सुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। ऐसे ग्रन्थ रत्न के सृजन हेतु आचार्य श्री के चरणों में हार्दिक नमन है।

डॉ. प्रेमचन्द्र रामका (प्राचार्य)

राजकीय शास्त्रि संस्कृत महाविद्यालय, महापुरा (जयपुर- राजस्थान)

# विषय-सूची

अध्याय

(A) मेरा अनुभव : बच्चों सम्बन्धी	पृष्ठ सं.
(B) हृदयोद्गार	
1. स्वाभाविक धर्म	1
I धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ	13
II वस्तु स्वभाव धर्म (छ: द्रव्यों का धर्म) (धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से)	15
III जीव द्रव्य का धर्म	17
IV मुक्त जीव-संसारी जीव	18
V पुद्गल द्रव्य का धर्म	22
VI अनु	22
VII स्कन्ध	23
VIII धर्म द्रव्य का धर्म	24
IX अर्धधर्म द्रव्य का धर्म	25
X आकाश द्रव्य का धर्म	26
XI काल द्रव्य का धर्म	27
जिनवाणी स्तुति	30
2. धर्म के दस लक्षण	31
9. उत्तम क्षणा धर्म	31
2. मार्दव धर्म	32
3. आर्जव धर्म	33
4. उत्तम शौच धर्म	34
5. उत्तम सत्य धर्म	34
6. उत्तम संयम धर्म	35

7. उत्तम तप धर्म	37
बाह्य तप	38
अन्तरंग तप	39
ध्यान	41
C. त्याग धर्म	43
९. आकिंचन्य धर्म	45
१०. ब्रह्मचर्य धर्म	45
3. मोक्ष मार्ग (रलत्रय धर्म)	46
I. रलत्रय की परिभाषा	47
II. सम्यक् दर्शन की परिभाषा	47
III. तीन मूढ़ता	48
IV. सम्यक् दर्शन के आठ अंग	49
V. सम्यक् ज्ञान	50
VI. सम्यक् चरित्र	50
4. साधु की आचार संहिता	51
28 मूलगूण	51
पाँच समिति	52
पञ्चेन्द्रिय निरोध	55
१. नग्नत्व	58
२. स्थिति भोजन	64
३. एक भुक्त भोजन	64
४. अदन्त धावन	65
५. केशलोंच	65
६. अस्नान	66
७. भूमि शयन	67
5. अनेकान्त एवं स्याद्वाद धर्म	69
स्याद्वाद के सप्त भंग	70

6. कर्म सिद्धान्त	73
9. विश्व के सप्त तत्त्व नव पदार्थ	76
2. भावस्त्रव एवं द्रव्यास्त्रव	77
3. भावस्त्रव की परिभाषा	80
4. द्रव्यास्त्रव की परिभाषा एवं भेद	82
7. भाव बन्ध एवं द्रव्य बन्ध	83
9. बन्ध के भेद व कारण	84
8. पुण्य एवं पाप के स्वरूप एवं प्रभेद	97
9. पाप प्रकृतियाँ	10
9. सुभावना	106
10. आदि ब्रह्मा-ऋषभदेव	107
9. आदिनाथ के विभिन्न रूप	109
2. वृषभदेव बनाव वृषध्वज (महादेव)	120
11. २४वें अन्तिम तीर्थकर वर्धमान	123
12. अथ वैज्ञानिक जिज्ञासा - आध्यात्मिक समाधान	127
13. Quatations	130
14. सरस्वती पूजा	134
15. गुरुवन्दना अष्टक	136

### मेरी विवशता तथा चिन्ता क्यों ?

भाव को पवित्र करना, संक्लेश भाव से रहित होना, तथा आध्यात्मिक सुख शान्ति को प्राप्त करना धर्म का उद्देश्य है। और इसके लिए विभिन्न धार्मिक क्रिया-काण्डों की आवश्यकता होती है परन्तु जब धार्मिक क्रिया-काण्डों में संक्लेश, धन संग्रह, विग्रह (फूट), अशान्ति, अनुशासन विहीनता पाई जाती है।.... तब.....

- आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

महावृक्ष के समान पूर्ण विकास के लिए बच्चों को मुक्त वातावरण चाहिए

### मेरा अनुभव : बच्चों सम्बन्धी

वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनंदी जी गुरुदेव मैं यहाँ पर मेरे बाल्यावस्था के अनुभव के साथ-साथ दूसरें बच्चों के बारे में कुछ अनुभव लिख रहा हूँ, जिससे स्वयं, प्यारे बच्चे, उनके अभिभावक, शिक्षक, समाजसुधारक, मनोवैज्ञानिक, शिक्षा मनोवैज्ञानिक, शिक्षामंत्री, शिक्षा अधिकारी, सरकार, कानून आदि लाभान्वित हो सके।

मेरे कुछ पूर्व संस्कारों के कारण जब मेरी आयु 2-5 वर्ष की थी तब से मुझ में सामान्य बच्चों से कुछ अधिक बुद्धि, शालीनता, सदाचार आदि गुण थे। मेरी आयु जब 5 वर्ष से अधिक हो गयी तब मैं स्कूल में पढ़ने के लिए गया। मेरी तीव्र बुद्धि के कारण मेरे गुरु ने मुझे प्रथम कक्षा के बाद सीधे तीसरी कक्षा में प्रवेश दिला दिया। मैं तीसरी कक्षा से ही कक्षा के मोनीटरी के साथ कक्षा में अन्य बच्चों को पढ़ाना, अनुशासन में रखना स्कूल की व्यवस्था, गुरु के कार्य, सफाई करना आदि कार्य करने लगा। मेरी 6 वर्ष की आयु से ही मैं घर के अलग कक्ष में अकेला ही अध्ययन, मनन, विश्राम एवं रात को शयन करने लगा। मैं प्रायः ढाई-तीन वर्ष की आयु तक माता का दूधपान करता रहा। मेरी छोटी बहिन भी माता का दूध पीती थी और साथ-साथ मैं भी दूध पीता था। मुझे बाल्यकाल से ही बच्चे, वृक्ष (प्रकृति) पुस्तकें प्रिय लगते थे। मैं जब 4-5वीं कक्षा में पढ़ता था तब से बच्चों को घर में निःशुल्क पढ़ाता था साथ में उन्हें मैं मेरे द्वारा लगाये गये फलों के वृक्षों से फल के साथ-2 घर से मिठाईयाँ, मूँगफली आदि देता था। कुछ बच्चों का ‘बाल संघ’ बनाया था, जिसके माध्यम से मैं उन्हें को लेकर सड़क, गली, तालाब, कुँओं आदि की सफाई करता था, सफाई के समय गन्दगी के साथ-2 गोबर मत आदि की सफाई भी करता था। मैं हमारे घर के आस-पास फल-फूल के भी बगीचे लगाता था और सार्वजनिक क्षेत्र यथा-सड़क, मंदिर, कुँआ आदि के पास भी वृक्ष लगाता था। ग्राम, गली, सड़क, तालाब, कुँओं आदि की सफाई के लिए दूसरों को भी बोलता था। घर में एक ‘सरस्वती पुस्तकालय’ भी बनाया था। प्रायः मेरी उम्र जब सात वर्ष की थी तब से मुझमें तर्क-शक्ति, विश्लेषण-शक्ति, विवेक, मातृ-पितृ भक्ति, राष्ट्र भक्ति, साहस, तत्त्व चिन्तन,

एकान्त में ध्यान, सेवा, चर्चा, मनन, भ्रमण आदि गुण विकसित होने लगे थे मैं जब छठी कक्षा में पढ़ता था तब से स्कूल में भाषण करना, सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेना, स्कूल को अपना ही मानना, स्कूल की देखरेख करना प्रारम्भ कर लिया था। सातवीं कक्षा से अंग्रेजी में भी बोलना चर्चा करना प्रारम्भ कर लिया था। आठवीं कक्षा में मातृभाषा के साथ-2 अंग्रेजी में धारा प्रवाह भाषण करने लगा था। कक्षा के अपने विभाग तथा सम्पूर्ण विद्यालय में प्रायः मैं प्रथम स्थान प्राप्त करता था। वैसे तो मुझे हर विषय अच्छे लगते हैं परन्तु विज्ञान, गणित, दर्शन, तर्कशास्त्र मुझे अधिक प्रिय हैं। मैं विज्ञान, गणित, अंग्रेजी भाषा आदि में पिचहतर प्रतिशत (75%) से लेकर सौ नम्बर लाकर सर्वश्रेष्ठ रहता था। मैं मेरे गुरुओं का बहुत ही विनय करता था। अनुशासन भंग कभी नहीं करता था। गुरुओं की हर संभव सेवा करता था। घर में स्वेच्छा से भक्तिवशात्, मूँगफली, मिर्च आदि लेकर देता था। मेरे हर गुरु मुझसे प्रसन्न रहते थे। मैं प्रायः कभी छुट्टी नहीं लेता था। समय पर जाता था। गुरु के सामने प्रथम पंक्ति में बैठने की कोशिश करता था। ध्यानपूर्वक अध्ययन करता था। समझ में नहीं आने पर प्रश्न करता था या विशेष जानकारी के लिए भी प्रश्न करता था। गणित की कक्षा में गुरु के निर्देश पर श्यामपट्ट पर गणित करता था। विज्ञान की कक्षा में प्रयोग में भाग लेता था। इसी प्रकार भूगोल की कक्षा में भी बिना नक्शा अच्छा नहीं लगता था। इसीलिए गुरु से आज्ञा लेकर मैं खुद नक्शा लाता था और नक्शा से समझाने के लिए गुरु से अनुरोध भी करता था।

मेरी बुद्धि-लब्धि अच्छी होने के कारण तथा कक्षा में ध्यान पूर्वक अध्ययन करने के कारण मुझे विषय सही रूप में समझ में आ जाता था जिससे मैं नहीं भूलता था इसीलिए मुझे उसी विषय को अधिक बार रटना एवं पढ़ना नहीं पड़ता था। तथापि कक्षा में जिस विषय का अध्यापन गुरुजी कराते थे उस विषय को मैं ध्यानपूर्वक एक दो बार अण्डरलाइन करते हुये अध्ययन करता था और नोटबुक में ख अनुभव के अनुसार स्वयं की भाषा में उसको लिखता था। हमें कम होमवर्क दिया जाता था; कुछ गणित का होमवर्क अवश्य दिया जाता था। मैं होमवर्क का अवश्य करता था और सुबह उठकर गणित का अभ्यास करता था।

स्कूल से आने के बाद भोजन करके कुछ माता-पिता की सहायता, सेवा करता था और शाम को एक-डेढ़ किमी. दूर भ्रमण के लिए, शौच के लिए जंगल में

एकांत स्थान में जाता था। जंगल से पुनः आने के बाद शाम को पुनः स्नान करता था। घर में आकर दूसरे बच्चों को एक-डेढ़ घंटा निःशुल्क पढ़ाता था फिर धार्मिक, नैतिक, देश-विदेश की कथा-कहानी एवं महापुरुषों की जीवनी, पत्रिकाएँ आदि पढ़ता था फिर एक-डेढ़ घंटा स्कूल की किताबें पढ़ता था। सुबह उठकर हाथ-पैर, मुँह धोकर कुल्ला कर एक दो गिलास ठंडा पानी पीता था और नाक से भी आधा गिलास पानी पीता था! सुबह प्रकाश होने के बाद डेढ़ किमी. प्रातः भ्रमण एवं शौच क्रिया के लिए एकांत स्थान में जंगल में जाता था। अधिकांश समय प्रिय अच्छे मित्रों के साथ भ्रमण के लिए जाता था। शौच के लिए अपनी बाल्टी में दो-तीन लीटर पानी लेकर जाता था। नीम, बबूल आदि की दातून से ही दातून करता था। पुनः स्नान करके घर में आकर गाय का धारोण एक दो गिलास दूध पीता था और फल खाता था और कभी-कभी अंकुरित चने भी खाता था। मेरे प्रिय एवं स्वास्थकर भोजन में दूध, दूध से बनी वस्तुएँ, धी, धी से बनी वस्तुएँ, फल सब्जी, मेवा हैं। प्रायः हमारा स्कूल 10.30 से लेकर 4.30 तक होता था गर्मी में प्रातः कालीन स्कूल होता था। हम प्रायः पैदल ही स्कूल जाते थे। हम स्कूल के गृहकार्य, स्वडेस की सफाई, अध्ययन कक्ष की सफाई-सजावट हम स्वयं करते थे। परीक्षा के समय में अधिक जागकर अध्ययन नहीं करता था परंतु नियमित रूप में स्कूल की किताबों के साथ-साथ अन्य धार्मिक, सामाजिक राजनैतिक देश-विदेश की किताबों के अध्ययन के कारण न मुझे परीक्षा से डर लगता था न परीक्षा के समय अधिक अध्ययन करता था। तथापि मेरे नम्बर बहुत अच्छे आते थे। कभी भी मैंने ट्यूशन नहीं पढ़ा जो मेरे सहपाठी ट्यूशन पढ़ते थे उनसे भी मेरे अच्छे नम्बर आते थे। मैं हर क्षेत्र में अच्छा होने के कारण कुछ मेरे सहपाठी मुझसे ईर्ष्या करते थे, यहाँ तक कि मेरी किताबें, पेन, कपड़ा आदि चुराकर-छिपाकर, इधर-उधर रख देते थे, जिससे मेरी पढ़ाई न हो सके और मैं परेशान होऊँ और नम्बर कम आयें तथापि मैंने किसी के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया। यहाँ तक कि जो मुझे सताते थे उनके साथ भी बुरा व्यवहार नहीं किया इससे वे भी मुझसे बहुत प्रभावित हुए एवं मुझे सम्मान दिया।

कक्षा विभाग से लेकर विद्यालय तक में गुरु के बाद मुझे सभी सम्मान देते थे। बाद-विवाद, प्रतियोगिएँ, बाल सभाएँ आदि में मेरे गुरु मुझे अध्यक्ष बनाते थे। मैं कभी भी कक्षा में या परीक्षा में चोरी करके या दूसरों को पूछ करके उत्तर देता था।

नहीं लिखता था, भले ही मुझसे कुछ विद्यार्थी पूछकर या मेरी उत्तर पुस्तिका से देखकर लिख लेते थे। मैं गणित में इतना अच्छा विद्यार्थी था कि जब मैं आठवीं कक्षा में पढ़ता था तब नवीं कक्षा के विद्यार्थियों को गणित समझा देता था। गुरुजी से पढ़ते समय भी इतने ज्यादा प्रश्न करता था कि कभी—कभी मेरे सहपाठी मुझसे चिढ़ जाते थे परन्तु मेरे अधिकांश गुरु अच्छा मानते थे और सहपाठियों को बताते थे कि ये तुम सभी से अधिक जिज्ञासु, बुद्धिमान हैं इसीलिए यह अधिक प्रश्न करता है और मुझे ब्रह्मा कह कर पुकारते थे। गुरुजी बोलते थे कि यह ब्रह्मा के समान नये—नये प्रश्नों का निर्माण करता है। परीक्षा में मेरा परीक्षा—फल अच्छा होने के कारण प्रायः मुझे किसी भी कक्षा में फीस नहीं भरनी पड़ी। यहाँ तक कि विद्यालय की तरफ से जब मैं छात्रावास में रहता था, भोजन आदि की निःशुल्क व्यवस्था रहती थी। जब मैं सात—आठ वर्ष का था तब से ही हर विषय में भले ही वह धर्म, गणित, विज्ञान, राजनीति, समाजशास्त्र, इतिहास, भूगोल हो उस संबंधी बहुत ही जिज्ञासा उत्पन्न होना प्रारम्भ हो गई थी। मैं किसी भी विषय को सुनकर, पढ़कर या देखकर विश्वास नहीं करता हूँ। योग्यता के अनुसार परीक्षण—निरीक्षण और यथा योग्य अनुभव करने के बाद ही मैं विश्वास करता हूँ। इसीलिए विद्यालय के हर विषय के ऊपर मुझे विश्वास नहीं होता था। उस समय भी सत्य तथ्य क्या है वह जानने के लिए जिज्ञासु रहता था और मेरी यह जिज्ञासा और शंका निर्मूल नहीं थी। आगे जाकर जब मैंने अधिक व्यापक अध्ययन किया साधु, उपाध्याय, आचार्य बना तब स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया कि विद्यालय की किताबों में अनेकों गलतियाँ हैं और जिसका संशोधन करने के लिए वर्तमान में भी प्रयासरत हूँ।

मैं विद्यार्थी जीवन में प्राचीन, धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक स्थलों के साथ—साथ प्राकृतिक स्थल यथा पर्वत, नदी, समुद्र आदि को देखने के लिए छुट्टियों में बहुत भ्रमण करके छुट्टियों का सदुपयोग करता था। छुट्टियों में नये—नये ज्ञानवर्धक विभिन्न साहित्यों का भी अध्ययन करता था। साधु—सन्त, नेता, समाज सुधारकों के प्रवचन भी सुनने जाता था। समाज सेवा भी करता था। मुझे बाल्यकाल में विद्यार्थी जीवन से ही अनेकों भाषाओं का ज्ञान होने के साथ—साथ उन भाषाओं के साहित्यों का अध्ययन तथा उन भाषाओं को बोलने के कारण तथा मुझमें जिज्ञासा, साहस, शालीनता, नम्रता, गुण ग्राह्यता, सतर्कता होने के कारण मैं अकेला हजारों मील भ्रमण कर लेता था। अकेला भ्रमण करने के बाद भी कोई अप्रिय घटना

मेरे साथ नहीं घटी। जहाँ जाता वहाँ नये परिवार स्नेह के माता, भाई—बहन, मित्र बनाकर उनसे काम ले लेता था, और उनके घर में रहकर उनका अभिन्न अंग बनकर उनका भोजन करता था और सभी सुविधाओं का लाभ भी उठाता था।

मैं बाल्यकाल से सत्य—जिज्ञासु होने के कारण विभिन्न साधु—सन्त, समाज सुधारक, राजनेता, लेखक, कवियों के सम्पर्क में आया। उनसे ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त किया एवं चर्चा भी की।

मेरी बाल्यावस्था से लेकर अभी तक के गहन अनुसंधानात्मक अध्ययन से ज्ञात हो गया कि केवल स्कूल कॉलेज की औपचारिक, पढ़ाई से या रटन्त विद्या से वस्तुतः ज्ञान नहीं होता है, ध्यानपूर्वक जिज्ञासा—बुद्धि से विद्यालय की पुस्तकों के अध्ययन के साथ—साथ विनप्रता, अनुशासन, कर्तव्यनिष्ठा, स्वावलम्बन, जिज्ञासु प्रवृत्ति, अन्य विषयों के अध्ययन से ही विद्यार्थी, सच्चा विद्यार्थी बन सकता हैं और वह पाठ्य पुस्तक की परीक्षा में स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के साथ—साथ व्यवहारिक सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, राजनैतिक एवं वैश्विक दृष्टिकोण से स्वयं को योग्य प्रस्तुत कर सकता है।

मेरा अनुभव है कि अधिकांश बच्चे अधिकांशतः सरल सहज, नटखट, चंचल, जिज्ञासु, खेल प्रिय, आमोद—प्रिय, हँसी—मजाक करने वाले होते हैं। बाल्यावस्था में यह सब होना विधेय है एवं यह सब होना इनके विकास के लिए आवश्यक भी है। इससे मानसिक, शारीरिक व्यायाम होता है, परस्पर में प्रेम, संगठन, सौहार्द, सामाजिकता, लोकज्ञता, कष्ट—सहिष्णुता आदि गुण बढ़ते हैं। बाल्यावस्था में शरीर का विकास तीव्रता से होता है। रक्त संचालन, श्वासोच्च्वास की क्रिया भी तीव्रता से होने के कारण उपर्युक्त गुण होना उनमें स्वभाविक हैं और गुणकारी भी है। जो माँ—बाप, गुरु—शिक्षक आदि यह सोचते हैं कि बच्चों को केवल स्कूल की किताबें ही रटनी चाहिए, होमवर्क करना चाहिए, ट्यूशन जाना चाहिए परन्तु खेल—कूद, मनोरंजन, मंदिर, गुरु के पास, धार्मिक कक्षा, शिविर, प्रवचन, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग नहीं लेना चाहिए क्योंकि इनमें भाग लेने पर पढ़ाई मारी जाती है, परीक्षा में नम्बर कम आते हैं वे बाल मनोविज्ञान, शिक्षा मनोविज्ञान, शरीर—विज्ञान, समाज—विज्ञान, सामाच्च ज्ञान आदि से अनभिज्ञ हैं। वे ऐसे कार्य करते हुए स्वयं को एवं बच्चों को ठगते हैं एवं शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, नैतिक, सामाजिक गुणों को कुंठित करते हैं एवं उनमें बाधा पहुँचाते हैं। जिस

प्रकार एक वृक्ष को अति यत्नपूर्वक गमले में लगाकर के घर के अन्दर सुरक्षित रखने पर देखभाल करने पर भी उस वृक्ष का इतना विकास नहीं हो पाता है जितना कि एक वृक्ष खुले-मुक्त-वातावरण में सर्दी-गर्मी, वायु तूफान, आंधी, जल आदि को सहन करते हुये उससे तत्व प्राप्त करते हुए विकास करता है। उसी प्रकार जो बच्चे केवल स्कूल एवं घर की चार दिवारी में कैद होकर पुस्तकों के गमले में विकास करते हैं उनकी अपेक्षा विद्यालय के अध्ययन के साथ-साथ स्वावलम्बन, कर्तव्यपालन, सेवा, विनय, अनुशासन, धार्मिक-सांस्कृतिक कार्यों में सक्रिय भाग लेते हैं; खेल, व्यायाम, मनोरंजन, भ्रमण, पर्यटन, सफाई, वृक्षारोपण परोपकार आदि में भाग लेते हैं उनका सर्वांगीण विकास अधिक होता है इतना ही ही नहीं वे पढ़ाई में भी आगे निकल जाते हैं एवं परीक्षा में भी श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करते हैं।

बच्चों को उच्छ्रृंखल नहीं होने देना चाहिए। उनके लिए पूर्ण अनुशासन चाहिए परन्तु वह अनुशासन सुधारात्मक सहदय होना चाहिए। बच्चों के अच्छे कार्य के लिए प्रशंसा करने से, पुरुषकृत करने से उनके अच्छे गुणों में वृद्धि होती है एवं दुर्गुणों का ह्रास होता है। हर समय बच्चों को डाँटने से, टोका-टोकी करते रहने से, मना करने से, डरानेधमकाने से, हतोत्साहित करने से उनमें हीन-भावना, भय-ग्रंथि, उदासीनता उग जाती हैं जिससे वे विकास नहीं कर पाते हैं। पहले-पहले गलती करने पर उन्हें प्यार से समझाना चाहिए। यदि नहीं सुधरता है तो सुधारात्मक कड़ा अनुशासन भी करना चाहिए। यदि एक बच्चा बिगड़ता है तो देखादेखी अन्य बच्चे भी बिगड़ते हैं। एक बच्चे को अनुशासित करने पर अन्य बच्चे भी अनुशासित हो जाते हैं। बच्चों का हर कार्य क्रीड़ात्मक आनन्ददायी होना चाहिए। जो कार्य बच्चे स्वयं करते हैं उनमें उनकी रुचि, जागृति, तत्परता, कार्यदक्षता बढ़ जाती हैं। बच्चे अनुकरणशील होने के कारण तथा सक्रिय होने के कारण उन्हें प्रायोगिक काम सैद्धान्तिक से भी अच्छे लगते हैं, इससे उनका मन भी लग जाता है एवं आनन्द भी आता है। प्रेम से बच्चों से हम घर की सफाई, सेवा, गन्धगी की सफाई आदि कार्य करवा सकते हैं परन्तु डरा करके उनसे अधिक कार्य नहीं करवा सकते हैं।

बाल्यावस्था में शारीरिक वृद्धि के साथ-साथ मस्तिष्क के शेलों की भी वृद्धि होती है जिससे बच्चे नटखट, चंचलता के साथ-साथ जिज्ञासु भी होते हैं। इसीलिए वे बार-बार कुछ पूछते हैं, देखते हैं, छूते हैं, उठाते हैं, तोड़ते-फोड़ते हैं इससे

वे कुछ सीखना चाहते हैं। इन प्रवृत्तियों का सम्यक नियोजन करना चाहिए ना कि इन प्रवृत्तियों को दबाना चाहिए। बाल्यकाल में मस्तिष्क, भाव सक्रिय एवं मृदु रहने से वे हर विषय को जल्दी सीख लेते हैं, याद कर लेते हैं और संस्कारवान् बन जाते हैं, इसीलिए बाल्यकाल में अच्छे संस्कार उनमें डालने चाहिए। उप्र-वृद्धि के साथ-साथ मस्तिष्क कुछ कठोर होने के कारण और मस्तिष्क के कोषों की हानि होने के कारण स्मरण-शक्ति कुछ घट जाती है। इसके साथ-2 व्यक्ति में भय, शर्म, घमण्ड, दीनता-हीनता छलकपट आदि दुर्गुण प्रवेश कर लेते हैं। इसके साथ-2 पारिवारिक बंधन, झगड़ा, चिंता आदिके कारण भी स्मरण शक्ति घट जाती है। परन्तु जो व्यक्ति आयु-वृद्धि के साथ-2 बालकवत् सहज-सरल, चिंतारहित, जिज्ञासु रहता है उसकी स्मरण शक्ति में ज्यादा अंतर नहीं पड़ता है।

मेरी क्षुल्लक अवस्था से लेकर अभी तक प्रायः 2.5 वर्षों में हजारों विद्यार्थियों ने मेरे पास अध्ययन किया, मेरे साहित्य का लेखन कार्य किया, आहारदान, सांस्कृतिक प्रोग्रामों में भाग लिया, गुरुसेवा में समय लगाया ऐसे विद्यार्थियों में बुद्धिलब्धि, स्मरणशक्ति, तर्क शक्ति, विश्लेषण शक्ति में वृद्धि हुई है। वे परीक्षा में भी पहले से अधिक नम्बर लाकर उत्तीर्ण हुए हैं। जो बच्चे स्कूल की पढ़ाई कम होगी ऐसा विचार करके मेरे पास पढ़ने के लिए नहीं आते हैं और ट्यूशन भी पढ़ते हैं उनसे भी अधिक मेरे पास पढ़ने वाले बच्चे हर दृष्टि में आगे निकल जाते हैं। कुछ माता-पिता भी स्कूल की पढ़ाई मारी जायेगी, परीक्षा में नम्बर कम आयेंगे ऐसा विचार करके मेरे पास पढ़ने के लिए नहीं भेजते हैं परन्तु कुछ दिनों के बाद मेरे पास आने वाले बच्चों में विशेषतायें देखते हैं उनसे वे बच्चे भी पश्चात्ताप करते हैं एवं उनके माँ बाप भी पश्चात्ताप करते हैं। सुयोग मिलने पर मेरे पास पुनः पढ़ने के लिए आते हैं। ये सब कैसे संभव होता है?

अभी तक जो मैंने 11 प्रदेशों में भ्रमण किया; 50 हजार से भी अधिक स्कूल, कालेज, विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों को, पंडितों, अध्यापकों, लेक्चरर, प्रोफेसर्स, साधु-संत, उपाध्याय, आचार्य, आर्थिका, ऐलक, क्षुल्लक-क्षुल्लिका, ब्रह्मचारिणी-ब्रह्मचारी आदि को पढ़ाया उसके अनुभव के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि जो मेरे पास अध्ययन, लेखनकार्य, आदि कार्य करते हैं उन्हें मैं आक्षरिक शिक्षा के साथ-2 व्याकरण, धर्म, विज्ञान, गणित, सामाज्यज्ञान, सामाजिक व्यवहारिक ज्ञान, स्वावलम्बन, समयानुबन्धता, अनुशासन, कर्तव्यनिष्ठा,

निःरता, राष्ट्रीयता, परोपकारिता, सेवा, देव—गुरु भक्ति, प्रश्नों के उत्तर देना, मंच संचालन करना, भाषण देना, नृत्य—गान, व्यायाम, योगासन, सांस्कृतिक कार्यक्रम, संगठन, प्रेम, समन्वय, तार्किक विश्लेषण, अंधानुकरण नहीं करना, अन्याय का सनप्र विरोध करना आदि पाठ भी पढ़ाता हूँ। जिस के कारण उनका सर्वांगीण विकास होता है और वे आगे बढ़ जाते हैं। इसके साथ—साथ मैंने यह भी अनुभव किया है कि जो मेरे पास पढ़ते हैं उन्हें जल्दी सर्विस मिल जाती है। जो व्यापार करते हैं उन्हें व्यापार में अच्छी सफलता मिलती है। एक और मैंने विचित्र अनुभव किया है कि जिन लड़कियों की उम्र 25—30 वर्ष तक थी उनके माँ—बाप 10—15 वर्ष से शादी करने के लिए बहुत परिश्रम करने के बाद भी शादी नहीं हो पा रही थी उनकी भी शोषण शादी हो जाती है। मैं न तो शादी का पक्षधर हूँ, न शादी के लिए कोई आशीर्वाद देता हूँ बल्कि शादी को बरवादी मानता हूँ। इसीलिए तो मैं जब 8वीं कक्षा में पढ़ रहा था तब मैंने स्वेच्छा से बाल ब्रह्मचारी बनने की प्रतिज्ञा ली थी कि मैं भले ही वैज्ञानिक, नेता या साधु—संत बनूँ अविवाहित/ब्रह्मचारी ही रहूँगा। मेरी और भी एक प्रतिज्ञा थी कि मैं जीवन भर बालक एवं विद्यार्थी रहूँगा। मेरे अभिप्राय के अनुसार बालक माने सरल—सहज रहना और विद्यार्थी माने जिज्ञासु रहना, उम्र भर सत्य को जानने के लिए अध्ययन करना, इसी प्रकार मैं किसीको सर्विस मिले, व्यापार चले, शादी हो इसके लिए न तो आशीर्वाद देता हूँ, न मार्गदर्शन देता हूँ, न कोई पाठ पढ़ाता हूँ, तथापि प्रायोगिक रूप में सैकड़ों उदाहरण मेरे सामने हैं जिन ने उपर्युक्त लाभ उठाये हैं। इन सबसे मैंने जो अध्ययन किया कि जो मेरे सम्पर्क में आते हैं एवं अध्ययन करते हैं उनका सर्वांगीण विकास होता है; भाव निर्मल—पवित्र होता है व्यवहारिक गुण बढ़ता है, दक्षता, योग्यता आती है, पुण्य बंध होता है, इसके कारण ये सब होता है।

मैंने जो ऊपर स्व—पर सम्बन्धी अनुभव लिखा है इसके पीछे मेरा मूल उद्देश्य यही है कि हमारे राष्ट्र, धर्म के भावी कर्णधार प्यारे बच्चे मेरे अनुभव से कुछ शिक्षा ग्रहण करके स्व—पर उपकार करें। विद्यार्थियों को, मातापिता, शिक्षक आदि को ये गलत भ्रम तोड़ना चाहिए कि केवल कोर्स की किताबें पढ़कर ही कोई ज्ञानी, महान् आदर्श बनते हैं। अभी तक केवल भारत में ही नहीं विदेश तक में धार्मिक सामाजिक, राष्ट्रीय, शैक्षणिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, कानून के क्षेत्र में जितने भी महापुरुष दुए हैं वे केवल किताबी कीड़े ही नहीं बनते हैं। किताबी कीड़े तो अधिक

से अधिक पेट, पेटी, प्रजनन में ही लगते हैं या नौकर बनते हैं। विश्व इतिहास साक्षी है कि जो विद्यालय में अध्ययन करने के लिए भी नहीं गये ऐसे लोग भी स्वगुण, स्व पुरुषार्थ के कारण हर क्षेत्र में महान् बनें। यथा—जैनधर्म के तीर्थकर, महात्माबुद्ध, ईसामसीह, पैगम्बर, कबीरदास, सुकरात आदि ने स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। महान् वैज्ञानिक न्यूटन, आइन्स्टीन, ऐडीसन आदि भी स्कूली शिक्षा में कोई धुरन्धर नहीं थे। इसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्र में शिवाजी, राणाप्रताप, महात्मा गांधी, अब्राहम लिंकन, आदि भी कोई शिक्षा में महारथी नहीं थे। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी स्कूल की पढ़ाई से डरकर स्कूल नहीं गये। उनका प्राथमिक अधिकांश अध्ययन घर पर ही हुआ। इसी प्रकार महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भी स्कूल में कोई उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। ये सब स्व—पुरुषार्थ, लगान, उत्तम भावना, परोपकार, शोधबुद्धि, सत्य—जिज्ञासु, स्व—पर कल्याणक की भावना से महान् बनें। अभी तो अधिकांश ‘साक्षर’ राक्षस के समान व्यवहार करते हैं। भारत के अधिकांश भ्रष्टाचार, घोटाले, धोखाधड़ी, आतंकवाद, अत्याचार में साक्षर—राक्षस का ही अधिक योगदान है। एकाध अक्षर पढ़ते ही स्वयं को ज्ञानी, सभ्य, आधुनिक मान लेते हैं। स्वकाम, गुरुसेवा, माता—पिता की सेवा, राष्ट्रसेवा, शारीरिक श्रम आदि को हेय दृष्टि से देखते हैं। जो इन कार्यों को करते हैं उनसे भी धृणा करते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि मैं साक्षरता को, विद्यालय के अध्ययन को एकदम गलत मानता हूँ परन्तु जो इसका दुरुपयोग करते हैं, साक्षरता को ही शिक्षा मान लेते हैं, स्कूल—कॉलेज की पढ़ाई को ही संपूर्ण ज्ञान मान लेते हैं, स्वावलम्बन, सेवा, ‘सादा जीवन उच्च विचार’ आदि को त्याग देते हैं उनके प्रति ही ये सब मेरा अभिप्राय है। मैं उन में भी सुधार चाहता हूँ और वे भी सर्वोदय शिक्षा प्राप्त करके सर्वांगीण विकास करें ऐसी शुभ भावना भाता हूँ।

उपर्युक्त अनुभव के कारण मैं बाल विद्यार्थी जीवन से लेकर अभी तक बच्चों को विभिन्न विषयों का अध्ययन करवाता हूँ, शिविर लेता हूँ, उनसे आहार लेता हूँ, मेरे साहित्य कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करता हूँ। मेरे इस अनुभव से दूसरे भी लाभान्वित हों, और स्व विकास के साथ—2 विश्व कल्याण करते हुए शाश्वतिक सुख—शांति को प्राप्त करें ऐसी महती—शुभ भावना के साथ।

आचार्य कनकनंदी जी गुरुदेव

हिरण्मगरी, सेक्टर 4, उदयपुर (राज.)

11-1-2001

## हृदयोद्गार

श्री सच्चिदानन्द स्वरूपाय नमो नमः।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म निम्न श्रेणीय वाइरस जीव से लेकर सर्वोच्च श्रेणीय प्रबुद्ध मनुष्य तक प्रत्येक जीव सुख शान्ति के लिए सतत प्रयत्नशील है। यह सुख शान्ति प्राप्ति की आशा सर्वोत्तम है और इस प्रकार आशा वांछनीय भी है। यह आशा भी स्वाभाविक है, क्योंकि प्रत्येक जीव का स्वस्वभाव ही अनंत सुख शान्तिमय है अर्थात् प्रत्येक जीव अक्षय सुख, शान्ति का भण्डार स्वरूप है। जैसे जल का धर्म शीतल है, परन्तु अग्नि के संयोग पाकर उष्ण हो जाता है तो भी शीतलता गुण पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता है। केवल उसमें कुछ विकार आता है। पुनः यदि अग्नि का संयोग दूर किया जाता है तो जल स्वयमेव धीरे-धीरे शीतल हो जाता है। अन्य कारण यह है कि शीतल जल को जैसे अग्नि के ऊपर डालने से अग्नि का उपशम हो जाता है उसी प्रकार उष्ण से उष्ण जल को भी अग्नि के ऊपर डालने से अग्नि उपशम हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि जल का स्वभाव सर्वथा नष्ट नहीं हुआ था। इसी प्रकार राग-द्वेष-मोह-अविद्या-अन्याय-अत्याचार-दुराचार कुशील आदि रूप अग्नि के संयोग सम्बन्ध रूपी कारण से आत्मा में विपरीत परिणमन हुआ है, जिससे अशुद्ध आत्मा में अशान्ति, दुःख, क्लेशादि विकार भाव प्रकट हुये हैं। यदि राग, द्वेषादि रूपी अग्नि रूप संयोग को दूर किया जाये तो धीरे-धीरे आत्मा स्व-स्वरूप अक्षय सुख अवस्था को प्राप्त हो जायेगी। यही शाश्वत सुख, शान्ति प्राप्त करने का एक मात्र अद्वितीय सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक प्रयत्न है।

सुख, शान्ति प्राप्त करने के लिये यदि जीव भौतिक सामग्रियों का संग्रह करता है, काम भोग विषयों का सेवन करता है, द्वेष-वैर आदि भाव को धारण करता है, तो वह मानो जल को शीतल बनाने के लिये जल के साथ अग्नि का अधिकाधिक संयोग करता है। वह सतत प्रयत्न तो कर रहा है जल को शीतल बनाने के लिये, परन्तु अग्नि के संयोग से जल शीतल नहीं बनता है। उल्टे अधिकाधिक उष्ण होता जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक जीव सुख शान्ति प्राप्त करने के लिये तो सतत प्रयत्न करता है परन्तु उसका प्रयत्न जल को शीतल बनाने के लिये अग्नि संयोग के समान विपरीत होने के कारण वह अधिकाधिक दुःखी एवं संतापित होता जाता है।

आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक युग में उपर्युक्त प्रणाली से सतत प्रयत्न होने के कारण प्रत्येक जीव दिनों-दिन दुःखी होता जा रहा है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान

दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है उसी प्रकार आध्यात्मिक (मानसिक) दुःखादि दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। नीति है “आर्त नराः धर्म परा भवन्ति” अर्थात् दुःखी मनुष्य धर्मात्मा होते हैं, दुःखों से छूटने के लिये वे धर्म का अवलम्बन लेते हैं, इस नीति के अनुसार अभी कुछ सुखेच्छु धर्म के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। लोकोक्ति भी है ‘परोपकाराय सतां प्रवृत्यः’ सज्जनों की प्रवृत्ति परोपकार के लिए होती है। अतः स्व-पर, देश-राष्ट्र एवं विश्वकल्याण की पुनीत भावना को लेकर लिखी गई इस छोटी-सी पुस्तिका का नाम ‘धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका’ पुष्ट ॥१॥ है।

धर्म अखिल जीव जगत के लिये हितकारी है तथा विज्ञान भी प्रत्येक वस्तु के सदुपयोग से वरदान स्वरूप होता है एवं दुरुपयोग से अभिशाप स्वरूप है। महात्मा गांधी, आईस्टर्न आदि नेकहाथा-(Science is blind without religion and religion is lame without science) धर्म बिना विज्ञान अस्था है एवं विज्ञान बिना धर्म पंगु है।

मनुष्य के जीवन में यदि केवल भौतिक ज्ञान है और धर्म नहीं है तो वह मनुष्य अन्धों के समान है एवं केवल अन्ध-विश्वासात्मक धर्म है परन्तु विज्ञान नहीं है तो वह पंगु है। अन्धा मनुष्य जीवित रहते, चलते-फिरते हुए भी दृष्टि के अभाव से वस्तु को यथार्थ से देख नहीं पाता है, एवं पंगु देखते हुए भी आगे बढ़ नहीं सकता है। इस प्रकार जो भौतिकवादी प्रगति करते हुये भी धर्म, नैतिकता, विवेकशील, सदाचार, विनयादि को नहीं देखते हैं वे अन्धे के समान हैं तथा केवल अन्ध-विश्वासी लोग धर्म के नाम एर अकर्मण्य, दैववादी, मिथ्या परम्परा रूपी रूढ़ि में बन्धकर पंगु के समान आगे प्रगति नहीं करते हैं। जिस प्रकार जीवन रूपी कार के लिए गति रूपी उल्कान्ति / प्रगति / जागृति नवीनतादि चाहिए उसी प्रकार प्रकाश रूपी विवेक, विनय, सदाचार, विश्व मैत्री, सहयोग, सह-अस्तित्वादि-की भी नितान्त आवश्यकता हैं तथा इन्द्रिय, मन-वचन-संयम रूपी ब्रेक भी चाहिये। अभिप्राय यह है कि भौतिक विज्ञान ने मनुष्य को प्रगति रूपी तीव्र गति तो दी, परन्तु विवेकादि रूपी प्रकाश एवं संयम रूपी ब्रेक नहीं दिया है। प्रकाश एवं संयम के बिना मनुष्य रूपी कार-बेकार हो रही है। अभी मनुष्य समाज मछली (मत्स्य) के समान पानी में अबाधित रूप से तैर रहा है, पक्षी के समान आकाश में उड़ रहा है। अन्य ग्रह-उपग्रह के साथ सम्पर्क स्थापित कर रहा है परन्तु अभी तक-सच्चे मनुष्य के समान भू-पृष्ठ पर चलना नहीं सीखा; मनुष्य के साथ मनुष्य होकर रहना नहीं सीखा। सारी पृथ्वी के देश एक संयुक्त परिवार के समान परस्पर एक दूसरे के साथ मिल रहे हैं परन्तु एक परिवार के व्यक्तियों में प्रेम के अभाव से परिवार खण्ड-खण्ड हो रहा है। जीवन को ब्रेक एवं प्रकाश मिल सकते हैं तो

केवल सम्पर्क धर्म से ही। इसीलिये जीवन के पूर्ण विकास के लिए विज्ञान के साथ-साथ धर्म का भी अवलम्बन लेना ही होगा। जिससे जीवन की उन्नति हो उसका सहारा लेना ही चाहिये।

महाकवि कालिदास ने कहा है—

**पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।  
सन्तः परीक्षान्यतरत्मजन्ते, मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः॥**

अर्थात्— केवल प्राचीन होने से सब कुछ उत्तम नहीं होता और केवल नवीन होने से सब कुछ हेय नहीं होता। इसी प्रकार प्राचीन सब कुछ हेय नहीं होता तथा नवीन भी सब कुछ उपादेय नहीं होता। जो ज्ञानी, विवेकी, प्रज्ञापुरुष गुणवान हैं वह परीक्षा करके उत्तम (सद्गुण) को ग्रहण करता है एवं अविवेकी, अन्ध-अनुकरण करने वाले हैं वे भेड़ चाल के समान अनुकरण करते हैं।

हरिभद्र सूरि ने भी कहा है—

**पक्षपातो न मे वीरे, न देष कपिलादिषु।  
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यं परिग्रहः॥**

महावीर भगवान के प्रति मेरा पक्षपात नहीं है और कपिलादि दार्शनिकों के प्रति मेरा द्वेष नहीं है। किन्तु जिनका वचन युक्ति-युक्त है उनका अनुकरण करना चाहिये। विज्ञान में भी कुछ दोष-गुण हैं, अतः परिक्षण-निरीक्षण किये बिना ग्रहण करना प्रबुद्ध (प्रज्ञा धनी) के लिये हितावह नहीं है।

We can't want blind religion not also only Science but we want a scientific religion.

हम मिथ्या धर्म को नहीं चाहते तथा केवल भौतिक विज्ञान को भी नहीं चाहते परन्तु एक वैज्ञानिक धर्म को चाहते हैं। इसी पुनीत उद्देश्य को मन में लेकर धर्म एवं विज्ञान का यथा-शक्ति यथा-भक्ति समन्वय एवं समीक्षादि ‘सर्व जन हिताय सर्व जन सुखाय’ के लिए किया है। गुणी जन राजहंस की तरह गुणों को ग्रहण करके दोषों का त्याग कर देंगे ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

मैं स्वयं ज्ञान से, अनुभव से तथा चारित्र से बालक हूँ। बालक जैसे-उत्साह से, भावुकता से कुछ काम करता है उसी प्रकार से मैंने इस पुस्तक को लिखा है। इसमें तृटि नहीं होना ही आश्चर्य होगा। बालक के समान तृटि होना स्वाभाविक है। आप सहदय विज्ञ पुरुष मुझे अबोध बालक समझकर कृपा-दृष्टि से क्षमा करें एवं शुद्धि के लिए एक हिताकांक्षी के समान मार्ग-दर्शन करायें। मार्ग-दर्शकों को मैं अपना हिताकांक्षी मानूंगा।

आ. कनकनंदी जी

## परिच्छेद-1

# स्वाभाविक धर्म

जैसे साधारण नागरिक अपने जीवन यापन के लिये कृषि करता है, दूसरा कोई व्यापार करता है, अन्य कोई नौकरी करता है, अन्य कोई शिल्प कार्य करता है। उनके कार्य, क्षेत्र एवं पद्धति पृथक-पृथक् होते हुए भी लक्ष्य केवल एक ही है— जीवन यापन करना। उसी प्रकार विभिन्न परिस्थिति, देश काल आदि को लेकर धर्म की विभिन्न परिभाषायें होते हुए भी धर्म का एक ही उद्देश्य है— सुख-शांति प्राप्त करना। धर्म शब्द ‘धृ’ धातु से बना है। धृ का अर्थ है धारण करना। जिसमें धारण करने की शक्ति है, उसको धर्म कहते हैं।

धर्म की विभिन्न परिभाषायें—

‘देशयामी समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।

संसारदुखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे॥’

महान् दार्शनिक तत्त्ववेत्ता, तार्किक चूडामणि समन्तभद्र स्वामी प्रतिज्ञा करते हैं कि मैं उस धर्म को कहूँगा जो धर्म संसारी जीवों के समस्त मानसिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक दुःखों के कारणभूत कर्मों को नाश करके अनंत उत्तम सुख में धारण करता है। इससे सिद्ध होता है कि धर्म के माध्यम से अधिदैविक, अधिभौतिक एवं आध्यात्मिक तथा इहलोक, परलोक आदि के भय से निवृत्ति होती है एवं जीव को शाश्वतिक, अतीन्द्रिय, आध्यात्मिक अनंत सुख प्राप्त होता है। कहा है—

‘यस्मात् अभ्युदय निश्रेयस्य सिद्धिः स धर्मः।’

जिससे स्वर्गादि का अभ्युदय सुख एवं निर्वाण रूपी परम सुखकी सिद्धि होती है, उसको धर्म कहते हैं। कहा है—

धर्मः सर्व सुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्यते।

धर्मेणैव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः॥

धर्मान्नास्त्यपरः सुहद्रवभूतां धर्मस्य मूलं दया।

धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय॥

धर्म सर्व प्रकार के सुख को देने वाला है, हित करने वाला है, धर्म से ही निर्वाण

अथवा मोक्ष सुख मिलता है। इसीलिये हे सुख इच्छुक भव्य जीव धर्म को ही संचित करिये। धर्म को छोड़कर संसारी जीवों का कोई भी हित करने वाला नहीं है। धर्म का मूल दया अर्थात् करुणा या अहिंसा है। धर्म में मैं अपने चित्त को प्रतिदिन लीन करताहूँ। हे जगत् उद्घारक, सुख शांति प्रदायक! धर्म मेरा पालन कीजिये।

**पवित्री क्रियते येन येनैव ग्रियते जगत्।**

**नमस्तस्मै दयाद्राय धर्म कल्पाडिपाय वै॥**

जिससे जीव पवित्र हो जाता है और जो विश्व को धारण करता है, दया से आर्द्र धर्मरूपी कल्पवृक्ष की चरण को मैं नमस्कार करता हूँ, अर्थात् धर्म से ही पतित जीव पावन हो सकता है, दानव मानव हो सकता है, मानव महामानव, भगवान बन सकता है। यह संपूर्ण चराचर विश्व धर्म से आधारित है।

**धर्मो गुरुश्च मित्रं च धर्मः स्वामी च बान्धवः।**

**अनाथ वत्सल सोऽयं स त्राता कारणं विना॥**

धर्म ही गुरु है, मित्र है, स्वामी है, बांधव है, अनाथ का रक्षक है और बिना स्वार्थ से रक्षण करने वाला है।

**धर्मो मंगल मुक्तिकृष्टं अहिंसा संयमो तवो।**

**देवा वि तस्स पणमंति जस्स धर्मे सयामणो॥**

धर्म ही लोक में उत्कृष्ट मंगल है, अहिंसा-धर्म है, संयम-धर्म है एवं तप धर्म है। जिसका मन सर्वदा धर्म में लीन रहता है, उसको स्वर्ग के देव भी नमस्कार करते हैं।

संक्षिप्त में धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ—

**वत्यु सहावो धर्मो अहिंसा खमादि आद धर्मो।**

**रयणत्तयं य धर्मो अणेयंत सुभावणा धर्मो॥**

वस्तु का स्वभाव धर्म है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह एवं उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग आकिञ्चन, ब्रह्मचर्य ये आत्म धर्म हैं। रलत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक् चरित्र धर्म है। अनेकांत (स्याद्वाद) बारह भावना एवं मैत्री, प्रमोद, करुणा एवं माध्यस्थभाव भी धर्म है।

इस संक्षिप्त गाथा सूत्र में जो धर्म की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं, शब्दतः पृथक्-पृथक् होते हुए भी भाव से एक ही है। इसमें प्रायः विश्व में प्रचलित

धर्मसंप्रदाय की धार्मिक परिभाषाएँ गर्भित हैं। वस्तु स्वभाव धर्म यह सामान्य परिभाषा है, चेतन-अचेतन द्रव्य में जो स्व-स्वभाव है, वही भाव उनका धर्म है, जैसे पुद्गल का धर्म जड़त्व एवं जीव का धर्म चेतनत्व है। इस परिभाषा में संपूर्ण धार्मिक परिभाषाएँ गर्भित हैं। परंतु उत्तरवर्ती परिभाषाएँ चैतन्य द्रव्य अर्थात् जीव द्रव्य का स्वभाव रूप धर्म की परिभाषाएँ हैं।

**वस्तु स्वभाव धर्म**

(6 द्रव्यों का धर्म)

(धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से)

**“वस्तु सहावो धर्मो”—**

**वस्तु का स्वभाव धर्मः—** यह समग्र विश्व परिणमन शील होते हुए भी शाश्वतिक है अर्थात् विश्व की कभी सृष्टि नहीं हुई, कभी विनाश नहीं होगा, परन्तु प्रत्येक क्षण में परिणमन होता रहेगा।

**यथा लोगो अकिट्रिट्मो खलु अणाइणिइणो सहाव णिव्वत्तो।**

**जीवाजीवेहिं फुडो सव्वागासावयवो णिच्चो॥**

(त्रिलोकसार गाथा 4)

निश्चय से लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन, स्वभाव से निष्पन्न जीवाजीवादि द्रव्यों से सहित, सर्वाकाश के अवयव स्वरूप और नित्य हैं।

**“प्रतिक्षण गच्छतीति जगत्”**

**स्थिति जनन निरोध लक्षणं चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम्।**

(वृहत्स्वर्यंभू स्तोत्र)

जो प्रतिक्षण गमन करता है अथवा परिणमन करता है उसको जगत् कहते हैं।

चराचर रूपी जगत् प्रतिक्षण उत्पन्न होता है, नाश होता है एवं स्थिति को प्राप्त होता है।

**नैवासतो जन्मसतो न नाशो दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति॥**

(वृहत् स्वर्यंभू स्तोत्र)

सर्वथा असत् द्रव्य, सर्वथा उत्पन्न नहीं हो सकता है एवं सर्वथा सत् द्रव्य का नाश नहीं हो सकता है, केवल परिवर्तन हो सकता है। जैसे दीपक की प्रज्वलित अवस्था में समीपस्थ पुद्गल स्कंध रूप में परिणमन होते हैं एवं दीपक बुझने के

पश्चात् वही प्रकाशमय पुद्गल संक्षेप अंधकार (तम) रूप में परिणमित हो जाते हैं। परंतु पुद्गल संक्षेपों का सर्वथा नाश नहीं होता है। गीता में कहा है—

‘नाऽसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।’

सर्वथा असत् का सद्भाव नहीं होता है एवं सर्वथा सत् का अभाव नहीं हो सकता है।

वर्तमान भौतिक वैज्ञानिक लोगों ने भी सिद्ध किया है कि—

Nothing can be destroyed and nothing can be created but only the form can be changed.

कोई भी नवीन वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती है। कोई भी सद्भूत द्रव्य का नाश नहीं होता है परंतु उसके आकार प्रकार में परिवर्तन हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि विश्व अकृत्रिम, अनादि-निधन एवं परिणमनशील है। इस विश्व में अर्थात् लोकाकाश में जीव द्रव्य एवं अजीव द्रव्य भरे हुए हैं। यह लोकाकाश (विश्व) आलोकाकाश के मध्य में स्थित है।

विश्व में सामान्य रूप से दो द्रव्य हैं— 1. जीव (Soul) 2. अजीव। अजीव के पांच भेद हैं— 1. पुद्गल (Matter) 2. धर्म (Media of motion) 3. अधर्म (Media of rest) 4. आकाश (Space) 5. काल (Time)। इसी प्रकार संपूर्ण द्रव्य छः प्रकार के हैं। इन द्रव्यों का जो स्वभाव है, वह “वस्तु स्वभाव धर्म” के अन्तर्भूत है। अतः सामान्य रूप से संपूर्ण द्रव्यों के “वस्तु स्वभाव धर्म” निम्नलिखित है—

**अत्थित्त वस्तुत्त पमेयत्त अगुरुलहु भावो।**

**उप्पादवयधुवत्तं सब्ब दव्वाणं सामण्णो धम्मो॥**

अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरु-लघुत्व, उत्पाद-व्यय-धौव्य ये सर्व द्रव्यों का सामान्य धर्म है।

**अस्तित्व—** जिस धर्म के माध्यम से प्रत्येक द्रव्य विश्व में सद्भाव स्वरूप है, उसको अस्तित्व धर्म कहते हैं। होना, रहना, सद्भाव ये सब अस्तित्व के पर्यायवाची शब्द हैं। इसलिए जैसे आकाश अथवा आत्मा-परमात्मा शाश्वतिक है, उसी प्रकार भौतिक द्रव्य भी शाश्वतिक है।

**वस्तुत्व—** वस्तुत्व धर्म के कारण प्रत्येक द्रव्य अंतरंग-बहिंग के सद्भाव से अपना-अपना कार्य करता है।

**प्रमेयत्व—** इस धर्म के कारण प्रत्येक द्रव्य ज्ञान का विषय बनते हैं अर्थात् ज्ञान इस धर्म के माध्यम से ज्ञेय वस्तु को जानता है।

**अगुरुलघुत्व—** इस धर्म के कारण द्रव्य खण्डित होकर अन्य द्रव्य रूप परिणमन नहीं करता है। यह स्थितिस्थापक गुण है।

**उत्पाद, व्यय, धौव्य—** पूर्व पर्याय का नाश होना व्यय है, नवीन पर्याय की उत्पत्ति अथवा सृष्टि होना उत्पाद है एवं दोनों परिस्थिति में द्रव्य का कायम रहना धौव्य है। जैसे-कुम्हार मिट्टी से घड़ा बनाता है, इससे मिट्टी रूप पूर्व पर्याय का नाश हुआ, घड़ा रूप उत्तर पर्याय की उत्पत्ति हुई और दोनों अवस्थाओं में मिट्टी रूप द्रव्य का सद्भाव ध्रुवता है।

**जीव द्रव्य का धर्म—**

**चेदण णाणं दंसणं, सुह अणंतविरीय अवावाहं।**

**णिम्म णिरापेक्खं जीवाणं उत्तमो धम्मो॥26॥**

**अर्थ—** चेतना— अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अवगाहनत्व, निर्ममत्व, निरपेक्ष भाव जीवों के उत्तम धर्म हैं।

उपरोक्त छहों द्रव्यों में जीव द्रव्य सबसे अति उत्तम द्रव्य है, क्योंकि जीव में ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि उत्तम-उत्तम गुण पाये जाते हैं। विश्व में अनंतानंत स्वतंत्र-स्वतंत्र जीव हैं। उसमें से अनंत जीव स्वतंत्र अनंत सुख को भोग करने वाले मुक्त जीव हैं और अनंत जीव कर्म बन्धन में पड़कर परतन्त्र होकर अनंत दुःख सहने वाले भी हैं। सुख अथवा मुक्तावस्था, दुःख अथवा संसारावस्था को स्वयं निर्माण करता है।

**अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुक्खाण य सुहाणय।**

**अप्पा मित्तममित्तं य दुप्पट्टिय सुप्पट्टिय॥**

(बुद्धदेव)

**अर्थ—** आत्मा स्वयं सुख-दुःख का कर्ता है। सुपथगामी आत्मा स्वयं का मित्र है एवं कुपथगामी आत्मा स्वयं का शत्रु है।

**स्वभावतः** प्रत्येक आत्मा द्रव्यदृष्टि से समान है, प्रत्येक आत्मा में अनंत सुख आदि गुणों का सद्भाव होते हुए भी स्व-अर्जित कर्म के कारण वह अनंत सुखादि वर्तमान में तिरोहित हैं, किन्तु नाश नहीं हुए हैं। जब प्रबुद्ध आत्मा स्व पुरुषार्थ

के माध्यम से जीव के स्वभावभूत आगे वर्णित अहिंसा, उत्तम क्षमादि धर्म का पालन करेगा तब पूर्व संचित कर्म नष्ट होकर, तिरोहित ज्ञान-सुखादि गुण प्रकट हो जायेंगे। उस कर्म से रहित अवस्था के जीव को ही परमात्मा कहते हैं अर्थात् पतित आत्मा ही धर्म साधन के माध्यम से पावन होकर परमात्मा बन जाता है। जिस प्रकार खान से निकला हुआ अशुद्ध स्वर्ण, सोलह ताप अग्नि से शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार कर्म-कलंक से दूषित संसारी आत्मा भी धर्म रूप अग्नि से शुद्ध होकर परमात्मा बन जाता है।

### मुक्त जीव—

समस्त कर्म से मुक्त होने के बाद मुक्त जीव एक समय में सिद्धशिला में विराजमान हो जाते हैं और वहां पर अनंत सुखादि गुणों को भोगते हुए वहां ही भविष्यत् अनंत काल तक स्थिर रहते हैं। संसार में वापिस आने के कारण रूप कर्म के अभाव से पुनः संसार में नहीं आते हैं। वहां विश्व को देखते, जानते हैं, परन्तु किसी के भी कर्ता-धर्ता-हर्ता नहीं हैं। क्योंकि वे राग-द्वेष से रहित हैं।

### संसारी जीव—

संसारी जीव के दो भेद हैं— (1) स्थावर (2) त्रस

**स्थावर** — जिस जीव में केवल स्पर्शन इन्द्रिय ही रहती है, उस जीव को स्थावर जीव कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—

(1) पृथ्वीकायिक (2) जलकायिक (3) अग्निकायिक (4) वायुकायिक (5) वनस्पतिकायिक।

**पृथ्वीकायिक**— जिस जीव का स्वरूप पृथ्वी स्वरूप है, उसे पृथ्वीकायिक जीव कहते हैं, पत्थर, मिट्टी, मणि आदि इसके भेद हैं।

**जलकायिक**— जल ही जिस जीव का शरीर है, उसे जलकायिक कहते हैं। जैसे— पानी, ओस, बर्फ आदि।

**अग्निकायिक**— अग्नि ही जिस का शरीर है, उसे अग्निकायिक जीव कहते हैं। जैसे— अग्नि, दीप-शिखादि।

**वायुकायिक**— जिसका शरीर वायु ही है, उसे वायुकायिक जीव कहते हैं। जैसे— हवादि।

**वनस्पतिकायिक**— जिस जीव का शरीर वनस्पति है, उसे वनस्पतिकायिक कहते

हैं। जैसे— आम का वृक्ष, गुलाब का वृक्ष, रामफल का वृक्ष, सीताफल का वृक्ष आदि।

### निगोदियां जीव—

वनस्पति के दो भेद हैं— (1) साधारण वनस्पति, (2) प्रत्येकवनस्पति।

**साधारण वनस्पति**— जिस वनस्पतिकायिक जीव के एक शरीर के आश्रय में अनंतानंत जीव रहते हैं और सब एक साथ जन्म लेते हैं, एक साथ श्वासोच्छ्वास लेते हैं, एक साथ भोजन करते हैं और एक साथ मरते हैं उन्हें साधारण वनस्पति कहते हैं। इन्हें ही निगोदियां जीव कहते हैं।

**वर्तमान जीव** विज्ञान की अपेक्षा हम इसे बैकटीरिया या वायरस कह सकते हैं। उपरोक्त पांच स्थावर में शरीर बल, स्पर्शन इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास एवं आयु प्राण इस प्रकार चार प्राण होते हैं। वे जन्म लेते हैं, आहार ग्रहण करते हैं, सुख-दुःख का अनुभव करते हैं, भयभीत होते हैं, जीवनोपयोगी सामग्री संग्रह करते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं, मैथुन करते हैं एवं मरते भी हैं।

उपरोक्त पांच स्थावर के दो भेद हैं— (1) सूक्ष्म (2) बादर।

### सूक्ष्मजीव—

सूक्ष्मजीव बिना आधार से रह सकते हैं, इसलिए सूक्ष्मजीव सम्पूर्ण लोक में भरे हैं। सूक्ष्मजीव दूसरों को बाधा नहीं देते हैं एवं दूसरों से बाधित नहीं होते हैं, अर्थात् सूक्ष्मजीव कोई रूकावट डाल नहीं सकता है, मार नहीं सकता है, जला नहीं सकता है।

### बादर जीव—

बादर जीव को रहने के लिए आधार चाहिये। इसलिये बादर जीव सम्पूर्ण लोक में भरे हुए नहीं हैं, परन्तु आठ पृथ्वी के आधार पर एवं स्थूल जीवों के शरीर में रहते हैं।

### नित्यनिगोद—

जो अभी तक त्रसपर्याय को प्राप्त नहीं हुए हैं और आगे भी त्रसपर्याय को प्राप्त नहीं होंगे, उनको नित्यनिगोद कहते हैं। अन्य मतानुसार जो अभी तक त्रस पर्याय को प्राप्त नहीं किये हैं, किन्तु भविष्य काल में त्रसपर्याय को प्राप्त कर सकते हैं, उन्हें नित्य निगोद कहते हैं। इस जीव के परिणाम अत्यन्त कलुषित होने के

कारण निगोद अवस्था को त्याग कर त्रसअवस्था को प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ हो जाता है।

**इतरनिगोद या चतुर्गति निगोद-** जो निगोदिया जीव निगोद-अवस्था को त्याग करके त्रसपर्याय को प्राप्त कर पुनः निगोद-अवस्था को प्राप्त करते हैं उनको इतरनिगोद कहते हैं।

### त्रसजीव—

जो त्रस नाम कर्म के उदय से द्वीन्द्रियादि जाति में उत्पन्न होते हैं, उनको त्रसजीव कहते हैं। त्रस के चार भेद हैं, (1) द्वीन्द्रिय (2) त्रीन्द्रिय (3) चतुरन्द्रिय (4) पंचेन्द्रिय। यह जीव भय से भयभीत होकर प्राण (रक्षा) के लिए भागते हैं, इसलिये भी इनको त्रस कहते हैं। स्थावर जीव प्रायः भय से भयभीत होकर भाग नहीं पाते हैं।

### द्वि-इन्द्रिय-जीव—

जिस जीव में स्पर्शन, रसना इन्द्रिय होती हैं, उन्हें द्वि-इन्द्रिय-जीव कहते हैं। यथा— शंख, लट आदि।

### त्रि-इन्द्रिय-जीव—

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, प्राण इन्द्रिय होती हैं, उन्हें त्रि-इन्द्रिय-जीव कहते हैं, यथा—चींटी, खटमल आदि।

### चतुरन्द्रिय-जीव—

जिस जीव में स्पर्शन, रसना, प्राण, चक्षु इन्द्रिय होती हैं। यथा— मक्खी, भौंरा, पतंगा, मच्छर आदि।

**पंचेन्द्रिय-जीव—** जिस जीव में स्पर्शन, रसना, प्राण, चक्षु एवं कर्ण इन्द्रिय होती हैं, उन्हें पंचेन्द्रिय-जीव कहते हैं। यथा— मनुष्य, गाय, पश्ची, देव, नारकी आदि।

स्पर्शन (चर्म), रसना (जिह्वा), प्राण (नाक), चक्षु (नेत्र), कर्ण (कान) ये पांच इन्द्रिय हैं।

पंचेन्द्रिय जीव के दो भेद— 1. असंज्ञी 2. संज्ञी

**असंज्ञी पंचेन्द्रियजीव—** पंचेन्द्रिय सहित, किन्तु मन रहित जीव को असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे—जल—सर्प, कुछ तोता, गोह सर्प आदि।

एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तक में मन नहीं रहता है। तो भी पंचेन्द्रिय

मन रहित जीव को ही असंज्ञी कहते हैं। एकेन्द्रियादि को नहीं कहते हैं। मन रहित संसारी जीव विशेष उपदेश ग्रहण नहीं कर सकता है। उनमें हिताहित विचार करने के लिये विवेक नहीं होता है। उनमें सम्यग्दर्शन भी उत्पन्न नहीं हो सकता है इसलिये वे मोक्ष मार्गी भी उस पर्याय में नहीं बन सकते हैं। इस प्रकार के जीव अनंतानंत हैं।

**संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव—** पांच इन्द्रिय और मन सहित जीव को संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। यथा— मनुष्य, देव, नारकी, गाय, बैल आदि।

संज्ञी जीव उपदेश ग्रहण कर सकता है, इनमें विशेष विवेक रहता है, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है एवं उसी पर्याय में मोक्ष भी जा सकता है।

आधुनिक विज्ञान, केवल पंच स्थावर जीव में वनस्पति कायिक जीव को, जीव सिद्ध कर पाया है, अन्य चार स्थावर (पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक) को अभी तक जीव सिद्ध नहीं कर पाये हैं। कुछ वनस्पतिकायिक अत्यंत स्थूल होने के कारण उनको जीव सिद्ध करना सरल है किंतु चार स्थावर जीवों के शरीर इतने सूक्ष्म हैं कि, उनके एक शरीर को हमें चक्षु अथवा यंत्र के माध्यम से देखना कठिन हो जाता है। उदाहरण स्वरूप एक जल बिन्दु एक जलकायिक जीव नहीं है, किंतु असंख्यात जलकायिक जीवों का शरीर है। तो विचार करिये कि एक शरीर कितना सूक्ष्म है और उस जैविक शरीर में जो क्रिया होती है, उसका वैज्ञानिक लोग अभी तक शोध नहीं कर पाये हैं।

भारत के स्वनाम धन्य वैज्ञानिक डॉ. जगदीशचंद्र बोसने 1806 में वनस्पति को वैज्ञानिक दृष्टि से जीव सिद्ध करके विज्ञान जगत को चमत्कृत कर दिया जिससे उन्हें सर्वत्र सम्मान मिला। परन्तु जैन धर्म में लिखित रूप से ईसा (ईसामसीह) पूर्व से भी वनस्पति जीव प्रसिद्ध है, इसके साथ—साथ अन्य चार प्रकार के स्थावर का वैज्ञानिक दृष्टि से वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि जैन धर्म केवल प्राचीन नहीं है, परन्तु एक प्रामाणिक वैज्ञानिक धर्म है। विज्ञान में जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान में जो वर्णन है, उससे बहुत ही विस्तृत एवं प्रामाणिक वर्णन जैन धर्म में है। वैज्ञानिकों को शोध करने के लिए जैन धर्म का जीव विज्ञान सर्चलाईट के समान कार्य कर सकता है।

**प्रायः** जीव की उक्तान्ति एकेन्द्रिय से लेकर द्विन्द्रिय, द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय से चतुरन्द्रिय चतुरन्द्रिय से पंचेन्द्रिय होती है परन्तु अनेक जीव सीधे एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय भी बन सकते हैं और पंचेन्द्रिय भी जघन्य कार्य के कारण एकेन्द्रिय

बन सकते हैं तथा पंचेन्द्रिय आध्यात्मिक उल्कांति के माध्यम से भी बन सकता है। इसलिये एक जीव की उल्कांति की अपेक्षा वैज्ञानिक डारविन का उल्कांति जीव सिद्धान्त कुछ अंश में सत्य होते हुए भी पूर्ण सत्य नहीं है। क्योंकि वह संपूर्ण एक प्रकार जीव जाति को परिवर्तित होकर दूसरी उच्च जीव जातिस्तर पर सरिणमन करना मानता है। उनके सिद्धान्त के अनुसार उल्कांति ही उल्कांति है। परन्तु उल्कांति के साथ-साथ अवकांति भी होती है।

जीव संबंधी शोध करने के लिए वैज्ञानिकों को गोमटसार, जीव-कांड, धवला सिद्धान्त शास्त्र, द्रव्य संग्रह, तत्वार्थ-सूत्र आदि ग्रंथों का अवलोकन करना चाहिये।

### पुद्गल द्रव्य का धर्म—

**फास रस गंध वर्ण पुरण गलन येवा।**

**सद्ध छायाप्पकास पुग्गल दव्वाणं धम्मं॥**

अर्थ— जिस द्रव्य में स्पर्श-रस, गंध-वर्ण होते हैं और जो पूरण-गलन रूप होता है(पूरण अर्थात् मिलना, गलन अर्थात् बिछुड़ना) और जो शब्द-छाया-प्रकाश रूप परिणमन करता है उसको पुद्गल कहते हैं। दृश्यमान समस्त जगत् पुद्गल ही है। जिसको छूकर जाना जाता है, देखकर जाना जाता है, चखकर जाना जाता है, सूँधकर जाना जाता है और सुनकर जाना जाता है, वह समस्त द्रव्य पुद्गल जाना जाता है, सूँधकर जाना जाता है और सुनकर जाना जाता है, वह समस्त द्रव्य पुद्गल ही है।

अप, तेज, वायु, अग्नि पुद्गल ही हैं। विज्ञान इस को Element कहता है।

पुद्गल दो प्रकारका है— 1. अणु, 2. स्कंध

**1. अणु—** पुद्गल का अविभाज्य प्रदेश जो कि पुनः किसी भी प्रक्रिया से खंडित नहीं हो सकता है एवं जिसका आदि-मध्य-अन्त एक ही है और जो अग्नि से जलता नहीं है, पानी से गीला नहीं होता है, किसी यंत्र के माध्यम से अथवा चक्षु से दिखाई नहीं देता है उसे अणु कहते हैं। परमाणु जब मंद गति से गमन करता है तब एक समय में एक प्रदेश गमन करता है और जब तीव्र गति से गमन करता है, तब एक समय में चौदह राजू गमन कर सकता है। मध्यम गति में अनेक विकल्प हैं। अणु जब गमन करता है, तब उसकी गति को कोई भी वस्तु या यंत्रादि भी नहीं रोक सकता है।

(एक राजू अर्थात् असंख्यात् योजन है। जिसको वैज्ञानिक दृष्टि से असंख्यात् प्रकाश वर्ष कह सकते हैं। एक सैकण्ड के असंख्यात् भाग को एक समय कहते हैं।)

**2. स्कंध—** एकाधिक परमाणु जब उपयुक्त-योग्य रुक्षत्व (ऋण) एवं स्तिराध (घन) गुण के कारण से बंधते हैं, तब स्कंध उत्पन्न होता है। सूक्ष्म अवगाहनत्व गुण के कारण एवं विशेष बंध प्रक्रिया के कारण संख्यात्-असंख्यात्-अनंत या अनंतानंत परमाणु बनने के बाद भी चक्षु इन्द्रिय के अगोचर हो सकते हैं। पंचेन्द्रियों के द्वारा गृहित समस्त पुद्गल स्थूल स्कंध ही हैं। कुछ सूक्ष्म स्कंध को इन्द्रिय के माध्यम से भी नहीं देख सकते हैं।

वैज्ञानिक लोग कुछ वर्ष पूर्व प्रकाश, विद्युत आदि को द्रव्य रहित केवल शक्ति मानते थे परन्तु वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक आईन्स्टीन आदि ने सिद्ध किया है कि जहाँ पर भौतिक शक्ति है, वहाँ भौतिक द्रव्य है जहाँ पर भौतिक द्रव्य रहेगा वहाँ भौतिक शक्ति रहेगी।

इसको सिद्ध करने वाला आईन्स्टीन का सूत्र है  $E=MC^2$ । परंतु जैनधर्म प्रकाश, विद्युत, उद्योत (चन्द्र किरण,) सूर्य किरण, अंधकार आदि को पुद्गल की पर्याय प्राग् ऐतिहासिक काल से ही मान रहा था। विज्ञान जो आकर्षीजन, हाइड्रोजन, आदि 105 या 85 मौलिक तत्त्व मानता है वह वस्तुतः एक पुद्गल द्रव्य ही हैं क्योंकि उसमें स्पर्श-रस, गंध, वर्ण समान गुण पाये जाते हैं। विज्ञान जिसको वर्तमान अणु मानता है वह जैन सिद्धान्त की अपेक्षा स्थूल स्कंध ही है जिसमें अनंतानंत परमाणु मिले हुये हैं। वैज्ञानिक लोग परमाणु को अविभाज्य मानते हुये भी उनके द्वारा माना हुआ परमाणु पुनः पुनः अनेक विभाजित होता जा रहा है। इससे सिद्ध होता है कि उनका सिद्धान्त अपरिवर्तित, पूर्ण-सत्य-सिद्धान्त नहीं है।

अन्तरंग एवं बहिरंग कारण अर्थात् वातावरण के कारण पुद्गल में विभिन्न परिवर्तन होता रहता है। पुद्गल शुद्ध परमाणु रूप परिणमन होकर भी पुनः अशुद्ध पर्याय रूप में परिणमन कर सकता है। भौतिक वस्तु की ठोस अवस्था, तरल अवस्था एवं वाष्प अवस्था पुद्गल की पर्याय ही हैं। पुद्गल में जो स्पर्श, रस, गंध, वर्ण एक क्षण में हैं, अन्य क्षण में उनका स्पर्श, रस, गंध, वर्ण अन्य भी हो सकता है। जैसे

- कच्चा आम का वर्ण हरा, स्पर्श कठोर, रस तीता व खड़ा, गंध खट्टी गंध (असुरभि गंध) होती है और वही आम जब पक जाता है तब वर्ण-पीला, स्पर्श-नरम, रस-मीठा और गन्ध सुगंधित हो जाती है। इसी प्रकार पुद्गल का वर्ण से वर्णन्तर, रस से रसान्तर, स्पर्श से स्पर्शन्तर, गंध से गंधान्तर होकर विभिन्न वैचित्र पूर्ण अवस्था विशेष को प्राप्त होता रहता है।

आधुनिक भौतिक वैज्ञानिक जगत में जो शोध हुई है और शोध हो रहा है, उसका केंद्र प्रायः पुद्गल ही है। विद्युत, अणुबम, रेडियो, टेलीफोन, टेप रिकार्डर, कम्प्यूटर, टेलीफोन, सिनेमा आदि केवल पुद्गल की ही देन है। पुद्गल में भी अनंत शक्तियाँ निहित हैं। पुद्गल जितना शुद्ध से शुद्धतर होता है, उतनी उसकी शक्तियाँ ऊर्जित होती जाती हैं। वैज्ञानिकों को पुद्गल सम्बन्धी शोध करने के लिए तत्वार्थ सूत्र का पञ्चम अध्याय, प्रवचन-सार, पंचास्तिकाय, आदि ग्रन्थ बहुत बड़ा अवलम्बन हो सकते हैं।

### धर्म द्रव्य का धर्म-

अमुत्त णिच्च शुद्धं लोयायासं पमाण सिद्धम्।

गई परिणयाणं जीव रुवीणं गमणे णिमित्त धम्मम्॥

धर्मद्रव्य अमूर्तिक है, नित्य शुद्ध है, लोकाकाश प्रमाण है। गति परिणमि जीव एवं पुद्गलों को गमन करने में उदासीन निमित्त होता है।

विश्व में जीव और पुद्गल गमनागमन रूप क्रिया करते हैं, उस गमनागमन क्रिया के लिए माध्यम चाहिए। उस माध्यम रूप को धर्म द्रव्य कहते हैं। यहाँ धर्म द्रव्य का अर्थ पुण्य रूप क्रिया या आचरण नहीं है परन्तु यह एक पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त अभौतिक, अमूर्तिक, नित्य, शुद्ध, असंख्यात प्रदेशीवाला एक अखण्ड द्रव्य है।

गइ परिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।

तोयं जह मच्छाणं अच्छं ताणेव सो णैई॥

As water assists the movement of moving fish, so Dharama assists the movement of moving Pudgala and Jiva but Dharama itself does not move, but the (Pudgala and Jiva) which do not move, the Dharama does not help to move them.

जैसे गमन करती हुई मछली को पानी गमन करने में सहायक होता है परंतु पानी जबरदस्ती मछली को गमन नहीं करवाता है, उसी प्रकार गमन करते हुए जीव-पुद्गल द्रव्य को उदासीन निमित्त बनता है।

जिस प्रकार स्व-शक्ति से गमन करती हुई रेल के लिए रेल की पटरी की परम आवश्यकता होती है, रेल की पटरी के बिना रेल नहीं चल सकती है उसी प्रकार धर्म द्रव्य गति क्रिया के लिए नितांत आवश्यक है। विश्व की समस्त स्थानांतरित रूप क्रिया (एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए गमन) बिना धर्म द्रव्य की सहायता से नहीं हो सकती है, यहाँ तक की श्वासोच्छ्वास के लिये, रक्त संचलन के लिये, पलक झपकने के लिए, अंग-प्रत्यंग संकोच करने के लिए, तार, बेतार के माध्यम से शब्द भेजने के लिये, रेडियो, टी.वी., सिनेमा आदि में संवाद एवं चित्र भेजने के लिये, देखने के लिए एवं सुनने के लिये, ग्रह से ग्रहान्तर तक संवाद चित्र भेजने के लिए, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि के गमनागमन के लिए धर्म द्रव्य की सहायता नितांत आवश्यक है। धर्म द्रव्य के अभाव में ये क्रियाएं हो नहीं सकती हैं।

धर्म द्रव्य के साथ वैज्ञानिक जगत के ईथर को कुछ हद तक समान मान सकते हैं परंतु जैनधर्म में जो तथ्य पूर्ण वर्णन है वह वर्णन वैज्ञानिक जगत के ईथर में नहीं पाया जाता है। ईथर की शोध अभी हुई है किंतु धर्म द्रव्य का वर्णन जैनधर्म में प्राचीन काल से है। धर्म द्रव्य को विशेष जानना चाहिये। धर्म द्रव्य का वर्णन जैन दर्शन में ही है अन्य दर्शन में नहीं है।

### अधर्म द्रव्य का धर्म-

अमुत्त णिच्च सुद्धं लोयायासं पमाण सिद्धम्।

ठिदि परणियाणं जीव रुवीणं द्विदि णिमित्तमधम्म॥

अर्थ- अधर्म-द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य- शुद्ध है, लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है। जिस समय में जीव एवं पुद्गल ठहरते हैं, उस समय अधर्म द्रव्य ठहरने के लिए उदासीन निमित्त कारण बनता है।

यहाँ अधर्म का अर्थ पाप क्रिया नहीं है परंतु अमूर्तिक लोकाकाश व्यापी एक अखण्ड शुद्ध द्रव्य है। जैसे गमन करते हुए पथिक वृक्ष की छाया में बैठता है तब छाया ठहरने के लिये उदासीन कारण बनती है। जैसे-रेल को ठहराने के लिये

स्टेशन की रेल पटरी सहायक होती है। जैसे—बैठने के लिये कुर्सी, पाटा, चटाई, आदि सहायक होती है, किन्तु कुर्सी आदि जबरदस्ती मनुष्य को पकड़कर नहीं बैठाती। वैसे ही अर्धमंद्रव्य जीव और पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है इसलिये उदासीन शब्द कहा है जो कि महत्त्व का है।

अर्धमंद्रव्य के अभाव से स्थिर रहने रूप किया नहीं हो सकती है। इसके अभाव से विश्व के सम्पूर्ण जीव एवं पुद्गल अनिश्चित एवं अव्यवस्थित रूप से सर्वदा चलायमान ही रहेंगे। टेबल के ऊपर पुस्तक रखने पर दूसरे समय में पुस्तक वहाँ पर नहीं रहेगी। गाड़ी को रोकने पर भी गाड़ी नहीं रुकेगी, कोई भी व्यक्ति कुछ निश्चित समय के लिये एक ही स्थान में खड़ा या बैठा नहीं रह सकता है। यहाँ तक की सम्पूर्ण विश्व यदृच्छाभाव से यत्र तत्र फैल कर अव्यवस्थित हो जायेगा और वर्तमान में जो विश्व की संगठन (संरचना) है, वह नहीं रह सकती है। शरीर का भी जो संगठन है, वह भी फैलकर के विस्फोट होकर यत्र-तत्र बिछुड़ जायेगा।

आधुनिक विज्ञान की अपेक्षा जो केन्द्राकरण शक्ति Gravitational force है उसके साथ अर्धमंद्रव्य की कुछ सदृश्यता पायी जाती है परंतु अर्धमंद्रव्य की जो सटीक वैज्ञानिक सूक्ष्म परिभाषा है, वह केन्द्राकरण शक्ति में नहीं है।

इसके बारे में विशेष जानने के लिए द्रव्य संग्रह, पंचास्तिकाय आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये।

अर्धमंद्रव्य का वर्णन जैनदर्शन में ही है, अन्य दर्शनों में नहीं है।

### आकाश द्रव्य का धर्म—

**अमुत्त णिच्च सुद्धं सव्ववापि महादव्यम्।**

**सग-पर ओगासदाणं आगास दव्वाणं धम्मम्॥**

आकाश द्रव्य अमूर्तिक है, नित्य शुद्ध है, सर्व व्यापी है, सब में बड़ा द्रव्य है, स्व-पर को अवकाश (स्थान) देना इस का धर्म है।

आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशी, सर्व व्यापी, सब से बड़ा द्रव्य है। अन्य पुद्गल आदि पांच द्रव्य इस आकाश के जिस मध्य भाग में रहते हैं उसे लोकाकाश (विश्व) कहते हैं। लोकाकाश केवल असंख्यात प्रदेशी है। आकाश अमूर्तिक होने के कारण इसका भाग (टुकड़ा) नहीं हो सकता है। तो भी जहाँ पर अन्य-अन्य द्रव्य पाये जाते हैं उसको लोकाकाश तथा शेष भाग को अलोकाकाश व्यवहार चलाने के

लिए कल्पित किया गया है। आकाश (Space) अन्य द्रव्यसे रहित एक शून्य खोखलापन नहीं है परन्तु वह स्वयं अस्तित्व, वस्तुत्व, अमूर्त आदि अनंत गुण सहित एक वास्तविक द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य के रहने के लिए यह द्रव्य सहायक होता है। इसके अभाव से रहना असम्भव हो जायेगा कुछ दर्शनकार आकाश को मानते हैं तो कुछ इसको नहीं मानते हैं। विज्ञान भी अभी जिस प्रकार जैन धर्म (दर्शन) में वर्णन है, उसी प्रकार मानता है। लोकाकाश के तीन भेद हैं। ऊर्ध्व लोक (स्वर्ग लोक) मध्य लोक (जिसमें भारत, एशिया, पृथ्वी, जम्बूद्वीप, लवण समुद्र आदि असंख्यात द्वीप समुद्र हैं) अधोलोक (नरकलोक)। आकाश में पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, निहारिका आदि रहते हैं।

### काल द्रव्य का धर्म—

**अमुत्त णिच्च सुद्धं पत्तेय लोयाप्पदेसे द्विदं।**

**सग पर परिणयाणं णिमित्तं काल दव्वस्स धम्मम्॥३१॥**

अर्थ— काल द्रव्य अमूर्तिक, नित्य, शुद्ध एवं लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में स्वतन्त्र-स्वतन्त्र अवस्थित है। काल द्रव्य स्वयं के परिणमन के लिए जीव-पुद्गल, धर्म, अर्धमंद्रव्य, आकाश के परिणमन के लिए निमित्त सहायक होता है।

काल के दो प्रकार— (1) निश्चय काल (2) व्यवहार काल।

(1) निश्चय काल— रन्तों की राशि की तरह स्वतन्त्र रूप से लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में स्थित होने वाले असंख्यात कालाणु निश्चय काल द्रव्य हैं।

(2) व्यवहारकाल— सूर्य, चन्द्र आदि के गमन के कारण जो दिन, रात, ऋतु, अयन, घड़ी, घण्टा आदि जो व्यवहार होता है उसको व्यवहार काल कहते हैं। अढाई द्वीप में सूर्य, चन्द्र के गमन के कारण व्यवहार काल है। स्वर्ग, नरक में व्यवहार काल नहीं होने पर भी यहाँ अर्थात् मध्यलोक की अपेक्षा वहाँ का व्यवहार चलता है परन्तु निश्चय काल स्वर्ग-नरकादि सम्पूर्ण लोकाकाश में विद्यमान है। प्रत्येक द्रव्य में जो उत्पाद-व्यय आदि शुद्ध परिणमन होता है उसके लिये भी काल द्रव्य चाहिये। काल द्रव्य के अभाव से परिणमन का अभाव हो जायेगा, जिससे प्रत्येक द्रव्य कूटस्थ हो जायेगा, अर्थात् अपरिवर्तनशील हो जायेगा। कूटस्थ के कारण कोई भी कार्य नहीं हो सकेगा।

कुछ दार्शनिक केवल व्यवहार काल को मानते हैं और निश्चयकाल के सद्भाव

का निषेध करते हैं किन्तु निश्चय काल के अभाव में व्यवहार काल भी नहीं हो सकता है। क्योंकि प्रत्येक वस्तु प्रतिपक्ष सहित होते हैं अर्थात् व्यवहार का प्रतिपक्ष निश्चय होना चाहिये। वर्तमान में वैज्ञानिक लोग इसको (Time Substances) कहते हैं।

विश्व संरचना के लिये जीव का स्थान सबसे महत्त्वपूर्ण है। जीव ज्ञाता है, दृष्टा है, कर्ता है, भोक्ता है, प्रभु है, विभु है। जीव बिना समस्त विश्व शमशान के समान सन्नाटामय चैतन्य रहित है। द्वितीय महत्त्वपूर्ण भूमिका पुद्गल द्रव्य की है। विश्व के संचालन में जितना जीव का हाथ है उतना ही हाथ पुद्गल का भी है। विश्व की समस्त भौतिक-संरचना पुद्गल से होती है। विश्व को गृह मानने पर गृह का मालिक जीव है एवं गृह का निर्माण पुद्गल से होता है। धर्म द्रव्य, आने वाले पथिक के लिये मार्ग का काम करता है, तो अर्धम द्रव्य पथिक के लिये स्टेशन है। काल पुरातन को मिटाकर नवीनीकरण के लिये सूत्रधार है तो आकाश सबको विश्राम देने के लिए सहायता करता है। इस प्रकार विश्व के लिये छह द्रव्य परस्पर सहयोग देकर अनादि से सह-अवस्थान कर रहे हैं एवं करते रहेंगे।

विश्व शाश्वतिक होने के कारण विश्व में स्थित संपूर्ण द्रव्य भी शाश्वतिक है। उनमें परस्पर सहकार से परिणमन होता रहता है। जैन धर्म, स्वाभाविक विश्व एवं द्रव्यों को मानता है। जैन धर्म, वस्तु स्वभाव धर्म होने से विश्व जैसे स्वाभाविक एवं अनादि-अनंत है उसी प्रकार स्वाभाविक एवं शाश्वतिक धर्म है। ऐतिहासिक शोध के अभाव से, कुछ वर्ष पूर्व कुछ ऐतिहासिक विद्वान एवं दार्शनिक विद्वान जैनधर्म को अर्वाचीन मानते थे। कोई जैन धर्म को हिन्दु धर्म की शाखा, तो कोई बौद्ध धर्म की शाखा मानते थे, कोई जैन धर्म के संस्थापक महावीर या पाश्वनाथ भगवान को मानते थे। कोई-कोई प्राचीन सिद्ध करने के लिए आदिनाथ (ऋषभनाथ) भगवान को मानते थे परंतु जैन धर्मके संस्थापक अर्थात् धर्म का प्रारम्भ करने वाले कोई नहीं हो सकते। क्योंकि जैन धर्म एक प्राकृतिक (स्वाभाविक) धर्म है। ऋषभदेव-पाश्वनाथ-महावीर या अन्यान्य जितने भी तीर्थकर हुये हैं, गणधर हुये हैं, आचार्य हुये हैं वे सब धर्म में आने वाले विकृति-मिथ्या मत तथा अंध-विश्वास को दूर करने वाले प्रचारक-प्रसारक हैं। किसी कारण से धर्म में आने वाले पतन का उत्थान करने वाले हैं। ऐसे तीर्थकर अभी तक अनन्त 24 तीर्थकर के रूप में हुये हैं और भविष्यत् में भी अनन्त 24 तीर्थकर प्रचार-प्रसारक होंगे। जैसे

आकाश को कोई तैयार नहीं कर सकता है, किन्तु आकाश के विषय में जान सकता है, पुस्तक लिख सकता है, उसके बारे में व्याख्या कर सकता है, उसी प्रकार जैन धर्म का कोई संस्थापक नहीं हो सकता है परन्तु उसको जान सकता है उसका पुर्णोद्घार कर सकता है इसलिए जैन धर्म, हिन्दु धर्म या बौद्ध धर्म की शाखा नहीं है। जैन धर्म को, अन्य धर्मों की शाखा मानना, अपनी अयोग्यता का परिचय देना मात्र है। सत्य को न मानने पर भी कभी सत्य को आंच नहीं लगती न कभी आगे लगेगी।

### अभ्यास प्रश्न (परिच्छेद 1)

- (1) धर्म की क्या परिभाषा है?
- (2) धर्म से क्या-क्या लाभ होते हैं?
- (3) वस्तु का क्या स्वभाव है?
- (4) विश्व में कितने द्रव्य हैं?
- (5) जीव द्रव्य का क्या-क्या धर्म है?
- (6) जीव द्रव्य के मुख्य कितने भेद हैं?
- (7) संसारी जीव किसे कहते हैं?
- (8) स्थावर जीव का सविस्तार वर्णन करो।
- (9) त्रस जीव का सविस्तार वर्णन करो।
- (10) पुद्गल द्रव्य का क्या धर्म है?
- (11) अणु की क्या परिभाषा है?
- (12) स्कन्ध कब बनता है?
- (13) पुद्गल का वर्णन धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से करो।
- (14) धर्मद्रव्य का क्या धर्म है?
- (15) धर्मद्रव्य का वर्णन धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से करो।
- (16) अर्धम द्रव्य का क्या धर्म है?
- (17) अर्धम द्रव्य का वर्णन धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से करो।
- (18) आकाश द्रव्य का सविस्तार वर्णन करो।
- (19) काल द्रव्य का धर्म एवं उसके भेदों का वर्णन करो।
- (20) विश्व संरचना में छहों द्रव्यों का क्या योगदान है?
- (21) जैन धर्म क्यों विश्व धर्म एवं शाश्वतिक धर्म है?

### जिनवाणी स्तुति

वीर हिमाचल तें निकसी गुरु गौतम के मुखकुंड ढरी है।  
मोहमहाचल भेद चली जग की जड़ता तप दूर करी है।  
ज्ञानपयोनिधि माहि रत्नी बहुभंग तरंगिनि सी उछरी है।  
ता शुचि शारद गंग नदी प्रति मैं अजुली करि शीशधरी है।  
या जगमंदिर मे अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अतिभारी।  
श्री जिनकी धुनि दीप शिखासम जो नहिं होत प्रकाशनहारी।  
तो किस भाँति पदारथ पांति कहां लहते रहते अविचारी।  
या विधि संत कहें धनि हैं, धनि है जिन वैन बड़े उपकारी॥

दोहा

जा वाणी के ज्ञान तें, सूझे लोकातोक।  
सो वाणी मस्तक चढ़ो, सदा देत हूँ धोक॥

(तर्जः— नगरी—नगरी पनघट—पनघट गाता जाए बनजारा)  
गली गली में घूम—घूम कर बेच रहा है संघ प्यारा,

जैन धर्म ले लो प्यारा....

ओ दुनियाँ के रहने वालों, ले लो दिल को खोल कर  
अपने ही काँटो—बाटों से ज्यादा—ज्यादा तौल कर  
कीमत कुछ भी नहीं चाहिये, चाहे तुम ले लो सारा,  
जैन धर्म ले लो प्यारा—2.... गली—गली में....  
क्रोध बेचकर क्षमा खरीदो, मादर्व मान हटाकर के  
कपट छोड़ आर्जव अपनाओ, शौच लोभ पलटाकर के  
झूठ—झूठ है, सत्य—सत्य है, ब्रह्मचर्य नियम प्यारा  
जैन धर्म ले लो प्यारा—2.... गली—गली में....  
मन वश में कर संयम साधो, इच्छा से तप तौल लो  
अहंकार और राग त्यागकर, त्याग अकिञ्चन मोल लो  
राग भाव को छोड़ सभी तुम, बनो ब्रह्ममय अविकारा  
जैन धर्म ले लो प्यारा—2.... गली—गली में....

### परिच्छेद-2

## धर्म के 10 लक्षण

### (1) उत्तम क्षमा—धर्म

प्रतिशोध समर्थोऽपि यः आत्मभाव स्वभावतः।

क्षमिस्यन्ति स्वपरान् सा उत्तम क्षमा भवेत्॥

अर्थ— प्रतिशोध शक्ति के होते हुए भी जो आत्मा के सहज स्वभाव से स्वपर को क्षमा करता है, उसको उत्तम क्षमा कहते हैं।

क्ष=पृथ्वी। पृथ्वी जैसे सहन करती है, उसी प्रकार समता भाव से सहन करना उत्तम क्षमा है। पृथ्वी के ऊपर कृषक खेती करता है, तालाब, कूआं, नहर, खान आदि खुदवाते हैं तो भी पृथ्वी क्षुभित होने के कारण होते हुए भी एवं प्रतिशोध लेने की शक्ति होने पर भी क्षुभित नहीं होना उत्तम क्षमा है। श्लोक में “क्षमिस्यन्ति स्व—परान्” शब्द दिया गया है। इसका कारण यह है कि क्रोधित होकर दूसरों का प्रतिशोध लेने से अर्थात् अपनी आत्मा को क्षमा नहीं किया, जिससे महान् अक्षमा हुई। इसलिये मन में स्वयं क्षुभित नहीं होना वास्तव में स्वयं के ऊपर क्षमा है और उस अन्तरंग क्षमा भाव से दूसरों पर क्षमा रखना दूसरों के ऊपर क्षमा है। जो इस प्रकार दोनों प्रकार की क्षमा धारण करता है वही यथार्थ क्षमावान है। किसी शक्तिशाली जीव के द्वारा कष्ट देने पर अपनी दुर्बलता के कारण तत्काल तो कोई प्रतिशोध नहीं लेता परन्तु मन में प्रतिशोध की भावना रखकर मन में विचार करता है कि सुयोग्य अवसर प्राप्त होने पर बदला लूंगा तब वह व्यक्ति यथार्थ से क्षमावान नहीं है। कोई शक्तिशाली अन्याय—अत्याचार करता है, उसका विरोध करने के लिए शक्ति के अभाव से कोई बोलता है कि मैंने तुमको क्षमा कर दिया तो क्षमा नहीं हुई। अन्याय—अत्याचार—दुराचार का हिंसात्मक साधन या उपाय से विरोध नहीं करना चाहिये किन्तु अहिंसात्मक उपाय से निराकरण करना ही क्षमा है। यदि विरोध नहीं करते हैं तो वह अक्षमा धर्म है क्योंकि उससे दुनियाँ में अन्याय—अत्याचार—दुराचार एवं अन्यायियों का प्रभाव बढ़ता जाता है।

यदि सन्तान कुमारगामी है तो माता—पिता को अन्तरंग करुणा भाव से उसको

दण्ड देकर सन्मार्ग में लगाना भी क्षमा धर्म है क्योंकि उसमें प्रतिशोध की भावना नहीं बल्कि दूसरे का सुधार हो यही भावना है। जैसे-शिष्य के लिये गुरु, प्रजा के लिये राजा, जनता के लिये नगराधिपति, रोगी के लिये वैद्य, दोषी के लिये न्यायाधीश अपराधानुसार दण्ड देता है, तो वह भी क्षमा-धर्म के विरुद्ध नहीं है।

## (2) मार्दव धर्म-

अभिमान का कारण होते हुए भी मृदुस्वभाव से अहंकार नहीं करना उत्तम मार्दव धर्म है। यह मृदुता धर्म महान् गुणों का साधक है। अहंकार के कारणभूत विशेष ज्ञान, पूजा (बड़प्पन-प्रतिष्ठा) कुल जाति, शारीरिक बल, ऋद्धि, (धन, वैभव, शक्ति) तप, शरीर की सुन्दरता आदि के होते हुए अहंकार नहीं करते हुये मृदुता धारण करना मार्दव धर्म है। ज्ञानी सोचता है कि यह सब वैभव पूर्व कर्म के उदय से मिला है, पुण्य के अभाव से ये सब विलीन हो जायेंगे इसलिए यह वैभव मेरा स्वभाव नहीं है कर्मजनित है। मेरा आत्म वैभव, इस बाह्य वैभव से अनंत गुणा अधिक एवं शाश्वतिक है। कर्म ने मुझे ठगकर मेरे यथार्थ वैभव को लूट लिया है और यह तुच्छ वैभव मुझ को दे दिया है। दूसरी दृष्टि से मेरे भी महामानी, वैभव सम्पन्न, शक्तिशाली, तपस्वी, सुन्दर आदि गुणों से अलंकृत विश्व में अनेकानेक मानव हैं। उनके सामने मैं तो सूर्य के सामने जुगनू सदृश्य हूँ। इस प्रकार विचार करके ज्ञानीजन अहंकार नहीं करते हैं। जो जितना-जितना मृदु, विनयशील होता जाता है, उसको उतना-उतना सम्मान-महत्ता मिलती जाती है।

**सम्पूर्ण महाकुंभ न करोति शब्द, अर्द्धघट शब्द करोति नूनम्।**

**सज्जन महान् न करोति गर्व, गुण विहीनं बहुजल्यविंति॥**

पानी भरा हुआ कलश शब्द नहीं करता है, अर्द्ध भरा हुआ कलश छल-छल शब्द करता है। जो सज्जन ज्ञानी महान् होते हैं, वे गर्व नहीं करते हैं परन्तु जो गुण विहीन होते हैं, वे बहुत बकवास करते हैं। अहंकारी व्यक्ति गुरुजनों को सम्मान नहीं देता है, विनय नहीं करता है। महाप्रवाह (Flood) से बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ जाते हैं, परन्तु बेत, घास आदि को किसी प्रकार की क्षति नहीं होती है, क्योंकि पेड़ झुकता नहीं है जिससे पानी उसको उखाड़कर फेंक देता है परन्तु घास आदि नम्रता से झुकने के कारण पानी ऊपर से बह जाता है और उसकी किसी प्रकार

की क्षति नहीं होती है। इस प्रकार दुनिया में जीने की एक बड़ी कला है नम्रता (विनयी) होना। जब वृक्ष में पुष्प-फलादि नहीं रहता है तब वृक्ष सीधा खड़ा रहता है। फूल आने के पश्चात नम्र होता है। जितने फल अधिक आयेंगे एवं फल बड़े होते जायेंगे उतना ही वृक्ष अधिक नम्र होता जाता है। उसी प्रकार गुण विहीन नम्र नहीं होता है, अर्थात् झुकता नहीं है। अहंकारी ऊँट के समान सिर ऊपर करके अभिमान में चलता है और गुणी व्यक्ति नम्र होकर चलता है।

## (3) आर्जव धर्म-

मन-वचन-काय से जो सरल भाव है उसको आर्जव धर्म कहते हैं। यह आर्जव गुण महान् है और यह स्वर्गादि अभ्युदय-सुख एवं मोक्ष-सुख को देने वाला है।

बालकवत् मन से, वचन से, काय से कपटता-मायाचार-वक्रता छोड़कर जो सरल चिंतन, सरल कथन एवं सरल काया से व्यवहार करते हैं उसको आर्जव धर्म कहते हैं।

**मनस्येकं वचनस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।**

महात्माओं की मन-वचन-काय की सरलतापूर्ण एक सी प्रवृत्ति होती है एवं दुर्जनों की मन, वचन काय की प्रवृत्ति दूसरी ही होती है। जैसे-बगुला एक पैर से खड़ा रहकर ध्यानी के समान ध्यान करता है परन्तु मछली को देखते ही पकड़कर खा जाता है। उसी प्रकार जो बगुला-ज्ञानी-ध्यानी रहते हैं, वे बाह्य से तो साधु पुरुष दिखाई देते हैं परन्तु अंतरंग में महान् दुष्ट रहते हैं। ऐसे लोग “दिन का साधु रात का चोर” कहावत को चरितार्थ करते हैं। उनके “मुख में राम बगल में छुरी” रहती है। किसी भी प्रकार का पाप करके छिपाने से नहीं छिपता है और अधिक विकृतरूप धारण कर प्रकट होता है। जैसे कि लोक कहावत है—

पान न छिपे कभी छिपाय, आग न छिपे रुई लिपटाय।

पाप का छिपाना अर्थात् अग्नि को रुई में छिपाने के सदृश्य है। जैसे आग को रुई से छिपाने से अग्नि छिपती नहीं है और अधिक प्रज्ज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार पाप को छिपाने से और भी अधिक पाप प्रज्ज्वलित हो उठता है। मायाचारी से तिर्यक्य गति प्राप्त होती है और मायाचारी व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता है। बालक सरल होने से सब कोई उसको प्रेम स्नेह आदर देते हैं और बालक से किसी भी प्रकार से दोष होने पर भी उसे विशेष दोषी नहीं मानते हैं, इसका मूल कारण है सरलता।

#### (4) उत्तम शौच धर्म—

लोभ कषाय रूपी कल्पष के त्याग से जो आत्मा में पवित्र निर्मल भावना उत्पन्न होती है, उसको शौच धर्म कहते हैं, यह शौच धर्म सर्व तीर्थ में उत्तम तीर्थ है। और यह तीर्थ समस्त सन्ताप को दूर करने वाला है।

#### ‘लोभ पाप का बाप बखाना’

के अनुसार लोभ पापों में बड़ा पाप एवं सर्व पापों का मूल लोभ प्रवृत्ति है इसलिए आदर्श जीवन यापन करने के लिये यह कलंक स्वरूप है। इस लोभ रूपी कलंक से आत्मा दूषित हो जाती है। लोभ रूपी कलंक त्याग से, कीचड़ से रहित पानी जैसे स्वच्छ हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा स्वच्छ हो जाती है। यह निर्लोभता रूपी शौच धर्म उत्तम तीर्थ है, जैसे उत्तम तीर्थ में स्नान करने से शारीरिक ताप नष्ट हो जाता है इसी प्रकार शौच रूपी तीर्थ में स्नान करने से तृष्णा, लोभ, इच्छा, आकांक्षा रूपी अग्नि शान्त हो जाती है जिससे मनुष्य को महान् आध्यात्मिक मानसिक शांति मिलती है। अन्तरंग शुचिता रहित बाह्य शुचिता उसी प्रकार है जैसे विष्ठा के घड़े को ऊपर से स्वच्छ करना। केवल बाह्य चर्म को धोने से अन्तरात्मा पवित्र नहीं होती है।

महाभारत में कहा है—

आत्मा नदी संयम पूर्ण तीर्था, सत्योदका शील तटोदयोर्मिः।  
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्रः, न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा॥

आत्मा ही पवित्र नदी है, संयम रूपी पवित्र तीर्थ है, जो सत्य रूपी नीर (पानी) से भरा है, शील रूपी तट है, दया रूपी लहरें हैं ऐसे आत्म गंगा (नदी) में हे पाण्डु नन्दन ! तुम स्नान करो, जिससे आपकी आत्मा पवित्र होगी। केवल गंगा के पानी से स्नान करने से अन्तरात्मा पवित्र नहीं होगी। गंगा स्नान से आत्मा पवित्र हो जाती तो उसमें रहने वाले मेंढक—मछली की आत्मा पवित्र क्यों नहीं होती ? अन्तरात्मा पवित्र करने के लिये लोभ कषाय रूपी कलंक त्याग करके शौच रूपी निर्मल जल से स्नान करना अत्यन्त अनिवार्य है।

#### (5) उत्तम सत्य धर्म—

सभ्दोहितं सत्यं वचः सत्यंशिवंसुन्दरम्।  
सत्यं वस्तु स्वरूपं च चिदानन्द मंगलम्॥

प्राणियों के लिये हितकर वचन सत्य वचन है। सत्य ही शिव स्वरूप है एवं सुन्दर है। सत्य ही वस्तु का स्वभाव है और सत्य ही चिदानन्दमय एवं मंगल स्वरूप है।

केवल वह सत्य, सत्य नहीं है, जिससे प्राणियों का हित नहीं होता है किन्तु अहित होता है। परन्तु वह वचन सत्य है, जिससे प्राणियों का हित होता है। केवल सत्य वाचनिक नहीं होना चाहिये, वह मानसिक एवं शारीरिक भी होना चाहिये। सत्य को छोड़कर विश्व में अन्य कोई शाश्वतिक वस्तु नहीं है। सत्य ही शिव (शाश्वतिक मंगल) है। जो मंगल एवं शाश्वतिक होता है, वही सुन्दर है। यह जगत् सत्य में ही प्रतिष्ठित है। क्योंकि वस्तु स्वरूप सत् स्वरूप है। चिदानन्दमय मंगलमय भगवान् भी सत् स्वरूप है। महात्मा गांधी सत्य को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे, वे बोलते थे “Truth is God and God is truth” सत्य ही भगवान् है एवं भगवान् ही सत्य है। उनकी दृष्टि में सत्य को छोड़कर अन्य कोई भगवान् नहीं था। जैनाचार्यों ने भी कहा है—

‘सत्यं भयवम्’ अर्थात् सत्य ही भगवान् है। जो सत्य बोलता है एवं सत्य आचरण करता है, वह जो कुछ बोलता है, उसको सब कोई मान्यता देते हैं और उसका वचन मन्त्रवत् शक्तिशाली हो जाता है। सम्पूर्ण धर्म, दर्शन का साहित्य सत्य उपासक महापुरुषों के पवित्र वचन हैं, उनके पवित्र वचन ही उन—उन सम्प्रदाय के शास्त्र बन गये हैं और अपने—अपने सम्प्रदाय के लोग उन—उन शास्त्रों को बहुत ही पूज्य दृष्टि से देखते हैं।

#### (6) उत्तम संयम धर्म—

पंचेन्द्रियों का, मन का निरोध करना एवं प्राणियों की रक्षा करना एवं आत्मा में लीन होकर आत्म—अमृत रूपी भोजन करने को संयम धर्म कहते हैं।

संयम दो प्रकार का है (1) इन्द्रिय संयम (2) प्राणी संयम।

इन्द्रिय संयम—1. स्पर्शन इन्द्रिय, 2. रसना इन्द्रिय, 3. ग्राण इन्द्रिय, 4. चक्षु इन्द्रिय, 5. कर्ण इन्द्रिय ये इन्द्रियां पांच हैं।

इन्द्रियों को अपने—अपने दुष्प्रवृत्त रूपी विषयों से रोकना एवं मन की दुष्प्रवृत्त को रोकना इन्द्रिय संयम है।

प्राणी संयम—1. पृथ्वी कायिक 2. जल कायिक 3. अग्नि कायिक 4. वायुकायिक, 5. वनस्पति कायिक 6. त्रस कायिक (द्वीन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय,

पंचेन्द्रिय) जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम है। इन्द्रिय संयम एवं प्राणी संयम से आत्मा संयमित होकर आत्मा में ही रमण करने लगती है जिससे उसको आत्मानुभव रूप अमृत मिलता है। उस अमृत का पान करके वीर्यवान होकर कर्म रूपी यम को नाश करके अजर-अमर शाश्वतिक मोक्ष रूपी अमृत पद को प्राप्त कर लेता है।

### अवशेषन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्तानमिव क्रिया। दुर्भगभरणप्रायो ज्ञान भारः क्रिया विना॥

जिसका मन और इन्द्रिय असंयमित है, उसकी समस्त धार्मिक क्रियायें गज स्नान के समान हैं क्योंकि हाथी जैसे स्नान करके पुनः धूल, मिठ्ठी शरीर में डालकर गंदा हो जाता है, उसी प्रकार असंयमित व्यक्ति धर्म कार्य से जो कुछ शुद्धता को प्राप्त करता है, असंयम के माध्यम से पुनः मलिनता को प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार विधवा स्त्री आभूषण से अलंकृत होने पर शोभा नहीं देती है उसी प्रकार चारित्र रहित ज्ञान शोभा नहीं देता है, वह ज्ञान भारस्वरूप है।

जैसे सुशिक्षित भद्र शक्तिशाली घोड़ा मालिक का उपकार करता है एवं दुष्ट घोड़ा मालिक को विपत्ति में डालकर अपकार करता है, उसी प्रकार संयमित इन्द्रिय एवं मन प्राणी का उपकार करते हैं एवं असंयमित अवस्था में प्राणी को विपत्ति रूपी गड्ढे में डाल देते हैं। संयमित मन एवं इन्द्रिय, मन्त्री की पुलिस के समान है एवं असंयमित मन एवं इन्द्रिय, चोर की पुलिस के समान है। मन्त्री की सुरक्षा पुलिस करती है एवं मन्त्री की आज्ञानुसार पुलिस चलती है और पुलिस के अनुसार चोर चलता है एवं पुलिस चोर को दण्डित करती है। इसी प्रकार असंयम है। असंयमित मन एवं इन्द्रियाँ प्राणी के ऊपर शासन करते हैं एवं विभिन्न यातनाएँ देते हैं।

संयमित रूप से रेल गाड़ी चलती है तो किसी प्रकार की दुर्घटना नहीं होती है, यदि रेल गाड़ी संयम को छोड़कर अर्थात् पटरी से हटकर चलती है तो दुर्घटना निश्चित है। उससे गाड़ी की भी क्षति होती है और यात्रियों की भी क्षति होती है। संयम से चाकू से फल काटने पर हाथ नहीं कटता है एवं असंयम से फल काटने पर अंगुली कट जाती है। संयम से अग्नि से काम लेने पर अनेक उत्तमोत्तम कार्य हो सकते हैं एवं असंयमित होकर अग्नि से कार्य करने पर अनेक विध्वंसक

घटनायें घटती हैं।

महावीर भगवान गौतम गणधरस्वामी को संबोधन करते हुए बोले थे—

**“गोयम परमायेण एक समय न मुक्कऊ”।**

हे गौतम ! आपका एक क्षण भी प्रमाद से, असंयम से, लापरवाही से नहीं जाना चाहिये। क्योंकि—

**“संयमेव जीवनं असंयमेव मरणम्”।**

**संयम ही जीवन है एवं असंयम ही मृत्यु है।**

अनेक दुर्घटनाएँ असंयम के कारण घटती हैं। लगाम रहित दुष्ट घोड़े पर बैठकर जानेवाली यात्रियों की जो दशा होती है, वर्तमान में संयम रहित मनुष्य की भी वही स्थिति है। आधुनिक सभ्य व्यक्ति तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, परन्तु उसका लक्ष्य निश्चित नहीं है, जो मनोव्यापार डावांडोल है, सुरक्षा की निश्चितता से रहित है। जैसे एक कार के लिये गति चाहिये, प्रकाश चाहिये एवं ब्रेक चाहिये उसी प्रकार जीवन रूपी कार के लिये उन्नति रूपी गति चाहिये, ज्ञान रूपी प्रकाश चाहिये एवं संयम रूपी ब्रेक चाहिये। ब्रेक रहित कार बेकार है उसी प्रकार संयम रहित जीवन बेकार है। ब्रेक रहित गतिशील कार जैसे अनेक दुर्घटनाओं का कारण बनती है, उसी प्रकार संयम रहित जीवन में अनेक दुर्घटनाएँ छा जाती हैं।

### (7) उत्तम तप धर्म—

इच्छा निरोध को तप कहते हैं। वह तप बहिरङ्ग-अंतरङ्ग के भेद से दो प्रकार का है। वह तप सम्पूर्ण मनोवांछित फल को देता है। कर्मरूपी वन को नाश करने के लिये अग्नि के तुल्य है।

आज्ञानी जीव मृग के समान मृगमरीचिका रूपी वैभव को, विषय वासना को प्राप्त करके सुखी होना चाहता है, परन्तु अंततोगत्वा इच्छित फल को प्राप्त नहीं करके स्वयं ही मृग के समान मर मिटता है। जो ज्ञानी होते हैं, वे सोचते हैं एकतः संसार में सुख ही नहीं है। इच्छा की कभी पूर्ति होगी नहीं तब प्रयास करना वृथा ही है। जिस प्रकार सूर्य की ओर पीठ करके अपनी छाया को पकड़ने के लिये दौड़ने पर छाया आगे-आगे भागती जाती है, उसी प्रकार वैभव को, इन्द्रिय जनित सुख को पकड़ने के लिये जितना उनके पीछे भागेगे वे उतने ही आगे भागेंगे। परन्तु जैसे बैठ जाने से छाया पैर के नीचे स्वयमेव बैठ जाती है उसी प्रकार जो इच्छा

को त्याग कर स्वयमेव में स्थिर हो जाते हैं, उनकी इच्छा उनके चरण के नीचे बैठ जाती है।

**बाह्य-अभ्यन्तर भेद से तपाचरण दो प्रकार के हैं।** (1) अनशन (2) अवमौदर्य (3) वृत्ति परिसंख्यान (4) रस त्याग (5) एकान्तवास (6) काय क्लेश। ये बाह्य तप अन्तरङ्ग तप के लिये साधन हैं। इससे अंतरंग तप वृद्धि को प्राप्त होता है।

### बाह्य तप-

**1. अनशन तप-** इन्द्रियों का दमन करने के लिये, स्वास्थ्य सम्पादन करने के लिये, कषायों को मंद करने के लिये, आत्म बल वृद्धि के लिये, ब्रह्मचर्य को निर्मल बनाने के लिये, शरीर को हल्का एवं स्फूर्तिमय बनाने के लिये ज्ञान-ध्यान सम्पादन के लिये जो 4 प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है उसे अनशन कहते हैं।

**2. अवमौदर्य तप-** आलस्य एवं प्रमाद को दूर करने के लिये एवं उपरोक्त अनशन के कारण को यथायोग्य सम्पादन के लिये भूख से कुछ कम आहार करना अवमौदर्य तप है।

**3. वृत्ति परिसंख्यान-** इच्छा निरोध के लिये, इन्द्रिय दमन के लिये, अनियत आहार के लिये, राग-द्वेष दूर करने के लिए आहार संबंधी जो नियम होते हैं उसे वृत्ति परिसंख्यान तप कहते हैं।

**4. रस परित्याग-** जिह्वा-लालसा को जीतने के लिये, इन्द्रिय दमन के लिये, ब्रह्मचर्य व्रत निर्मल बनाने के लिये, रस की गृद्धता कम करने के लिए एकाधिक रस तथा सर्व रसों का त्याग करना रस परित्याग तप है।

**5. एकान्तवास-** ध्यान-अध्ययन, मनन-चिंतन सुचारू रूप से करने के लिये, राग-द्वेष कम करने के लिये, प्रशांत भावना के लिये, स्त्री-पुरुष, नपुंसक, पशु-कीड़े वगैरह, दुष्ट व्यक्ति, क्षुद्र जीव से रहित एकान्त स्थान में बैठना-उठना-शयन करना, अध्ययन करना एकान्तवास या विविक्त शय्यासन है।

**6. काय-क्लेश-** शरीर से ममत्व घटाने के लिये, आत्म साधन के लिये जो शरीर को अनेक प्रकार के आतापन योगादि से सुसंस्कारित या प्रशिक्षित किया जाता है उसको कायक्लेश तप कहते हैं। किन्तु रलत्रय से रहित या विशुद्ध परिणाम रहित अज्ञानता से किया जाने वाला काय-क्लेश तप नहीं वह स्वयं की मृद्धता के साथ मूर्खता है।

### छह अन्तरंग तप-

1. प्रायश्चित्त 2. विनय 3. वैव्यावृत्ति, 4. स्वाध्याय 5. व्युत्सर्ग 6. ध्यान ये छह प्रकार के अन्तरंग तप हैं।

**1. प्रायश्चित्त-** पूर्व कृत मिथ्या भाव, कर्म एवं प्रवृत्ति का शोधन करने के लिये चित्त विशुद्धि के लिये, कर्म निर्जरा के लिये, सबके विश्वास पात्र बनने के लिये, गुरु साक्षीपूर्वक या गुरु के नहीं रहने पर भगवान के समक्ष, स्व साक्षी पूर्वक स्व निंदा-गर्हा आलोचना-प्रतिक्रमण आदि पूर्वक जो आत्म शोधन किया जाता है, उसको प्रायश्चित्त कहते हैं। प्रायश्चित्त से मन की शुद्धि होती है, जिससे अनेक मानसिक तनाव, ग्रंथियाँ खुल जाती हैं, मन स्वच्छ-निर्मल हो जाता है। अनेक मानसिक रोगों के साथ-साथ शारीरिक रोग भी नष्ट हो जाते हैं। वर्तमान की मानसिक चिकित्सा की प्रणाली अधिकांशतः इसके ऊपर निर्भर है।

**2. विनय –** गुण एवं गुणी के प्रति जो आदर-सत्कार पूज्य एवं विनम्र भाव है उसी को विनय तप कहते हैं। विनय के पात्र की दृष्टि से पांच प्रकार हैं—

1. ज्ञान विनय 2. दर्शन विनय 3. चारित्र विनय 4. तप विनय 5. उपचार विनय।

**1. ज्ञान विनय-** ज्ञान एवं ज्ञानी पुरुष का विनय करना ज्ञान विनय है।

**2. दर्शन विनय-** दर्शन से यहाँ सम्पर्क दर्शन लेना। सम्पर्क दर्शन एवं सम्पर्क विनय करना दर्शन विनय है।

**3. चारित्र विनय-** चारित्र एवं चारित्रवान पुरुषों का विनय करना चारित्र विनय है।

**4. तप विनय-** तप एवं तपस्वियों का विनय करना तप विनय है।

**5. उपचार विनय –** गुरुजन आदि तथा अपने से बड़े गुणवान, सज्जन, सधर्मात्माओं को उच्चासन देना, अभिवादन करना, उनकी प्रत्यक्ष और परोक्ष से प्रशंसा करना, उनके साथ भेद-भाव रहित व्यवहार करना आदि उपचार विनय है।

### विनय का फल

विनयवान व्यक्ति जिस गुण का विनय करता है उसे उस गुण की प्राप्ति हो जाती है। आचार्य कुन्दकुन्द देव जैसे अध्यात्म के अमर गायक भी कहते हैं कि—

**विणओ सासण मूलो, विणयादो संयमो तवो णाणं।**

**विणयेण विष्पृष्ठणस्स, कुदो धम्मो कुदो य तवो।**

(मूलाचार)

विनय शासन का मूल है। विनय से संयम, तप, ज्ञान की प्रगति होती है। विनय से रहित व्यक्ति का धर्म कहाँ है? तप कहाँ है? अर्थात् विनय रहित धर्म एवं तप निष्फल है।

**विणयेण विष्वहिणस्स हवदि सिक्खा णिरथ्या सब्बा।**

**विणओ सिक्खाह फलं विणय फलं सब्ब कल्याणं॥६६१॥**

**विणओ मोक्खद्वारे विणयादो संज्मो तवो णाणं।**

**विणएणाराहिज्जदि आयरिओ सब्ब संघो य॥६६२॥**

विनय से रहित सम्पूर्ण शिक्षा निरर्थक हो जाती है, क्योंकि शिक्षा का फल विनय है। यदि शिक्षा के माध्यम से विनय प्रकट नहीं हुआ तो विनय के अभाव से शिक्षा निष्फल होने से शिक्षा निरर्थक हुई, विनय का फल सर्व कल्याण है अर्थात् विनय से इह लोक में सन्मान-पूज्यता तथा परभव में स्वर्ग-मोक्ष मिलता है।

विनय मोक्ष के लिये द्वार स्वरूप है। विनय से संयम, तप एवं ज्ञान प्राप्त होता है, विनय से आचार्य सम्पूर्ण संघ को अनुशासित करते हैं निग्रह-अनुग्रह करते हैं एवं धर्म मार्ग में प्रवृत्त करते हैं। विनयशील शिष्यको गुरु प्रेम-आदर देते हैं, उसको योग्य शिक्षा ज्ञान-उपदेश देते हैं। विनय रहित शिष्य गुरु से तथा सहधर्मियों से भी सन्मान-आदर नहीं पाता है। गुरु उसको विशेष शिक्षा, ज्ञान व उपदेश नहीं देते हैं, जिससे उसका संयम-तप-ज्ञान की वृद्धि नहीं होती है परन्तु हास को प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है।

वर्तमान परिवारिक क्षेत्र में, सामाजिक क्षेत्र में, शैक्षणिक क्षेत्र में, प्रशासनिक क्षेत्र में, धार्मिक क्षेत्र आदि में केवल अविनय, उदण्डता एवं स्वेच्छाचार ही चल रहे हैं, जिससे अशांति-कलह, असंगठन, तनाव आदि का ही वातावरण है। अतः देश, राष्ट्र, समाज, परिवार में शांति का वातावरण बनाना चाहते हो तो आज विनय, सहन-शीलता को अपनाना ही अत्यावश्यक है।

3. वैद्यावृत्ति तप- गुरुजन, सहपाठी, साधर्मी, रोगी, विपत्तिग्रस्त जीवादि की निर्मल भाव से सेवा करना वैद्यावृत्ति तप है।

4. स्वाध्याय तप-

**नामूत्रास्ति न वा भविष्यति तपः स्कन्धे तपो यत्समं।**

**कर्मान्यो भव कोटिभिः क्षिपति यथोन्तर्मुहूर्तेन तत्॥**

शुद्धि वानशनादि तोऽमित गुणां येन श्रुते श्रुन्नपि।

**स्वाध्यायः सततं क्रियते स मृतावाराधना सिद्धये॥**

अनशनादि तप करके जो विशुद्ध परिणाम प्राप्त हो सकते हैं, उनसे भी अनंत गुणी विशुद्धि को स्वाध्याय के द्वारा यह जीव प्रतिदिन भोजन करता हुआ भी प्राप्त कर लेता है। यथाशक्ति उपवासादि करते हुये यदि स्वाध्याय किया जाय तब तो बात ही क्या है? इसी तरह जिन कर्मों को दूसरे तपोनिधि करोड़ों भवों में निर्जीर्ण कर सकते हैं, उन्हीं कर्मों को यह स्वाध्याय केवल अन्तर्मुहूर्त (कुछ कम दो घड़ी) मात्र काल में खपा देता है। तथा यह स्वाध्याय एक अपूर्व ही तप है जो कि अनेक अतिशयों से युक्त है जैसा कि पहले बताया भी जा चुका है।

अनशनादि छह प्रकार के बात्य तप और प्रायश्चित्तादि छह प्रकार के अंतरंग तप, इन सबमें इस स्वाध्याय के समान न तो कोई तप हुआ है, न है, न होगा। अतः मरण समय में आराधना की सिद्धि के लिये मुमुक्षुओं को नित्य ही स्वाध्याय करना चाहिये।

जो अध्ययन आत्मोन्तति के लिये किया जाता है वही यथार्थ स्वाध्याय है, यदि स्वाध्याय ख्याति-पूजा-लाभ या स्वयं के आचरण से पतित होकर अर्थोपार्जन के लिये किया जाने वाला स्वाध्याय या केवल परोपदेशादि के लिये किया जाने वाला स्वाध्याय यथार्थ में स्वाध्याय नहीं है। वह स्वाध्याय, स्वाध्याय नहीं है परन्तु अपध्यान या अर्थध्यान है एवं जिस शास्त्र से अर्थध्यान होता है वह शास्त्र नहीं वह शस्त्र है क्योंकि स्वयं का धातक है।

### कायोत्सर्ग

कुछ निश्चित समय के लिये शरीर को पर द्रव्य मान-कर, उससे निर्मम होकर एवं सम्पूर्ण अनर्थ का मूल मानकर शरीर से ममत्व त्याग करना कायोत्सर्ग है, इससे शारीरिक रोग नष्ट होते हैं, जिससे असंख्यात गुणित कर्मों की निर्जरा भी होती है।

### ध्यान

जो सारे सब सारेसु सो सारे यए गोयम।

**सारं ज्ञाणंति णामेण सबं बुद्धेहि देसिदं॥**

(प्रतिक्रमण)

हे गौतम् ! विश्व में जो अनेकानेक सार वस्तु हैं उन समस्त सार वस्तुओं में भी सार अर्थात् श्रेष्ठ ध्यान है। इस प्रकार का उपदेश महावीर भगवान ने अपने प्रिय शिष्य गौतम को दिया था।

### “एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं”

चित्त को कोई एक ध्येय वस्तु में स्थिर करना ध्यान है। मन जब विभिन्न विषयों में विभक्त हो जाता है, तब मन में स्थिरता नहीं रहती है। अस्थिरता के कारण मन की ग्रहणशक्ति, स्मरणशक्ति, बुद्धि-प्रज्ञाशक्ति आदि क्षीण हो जाती है। एक मानसिक शक्ति विभिन्न दिक् में विभाजित होने से उसकी संगठन शक्ति भी क्षीण हो जाती है जिससे कोई भी कार्य करने के लिये पर्याप्त ऊर्जा का अभाव होता है, उससे कार्य उत्तम रीति से नहीं हो पाता है इसलिये ध्यान की परम आवश्यकता है।

दीपशिखा स्वभाव से सीधी ऊपर जाती है परन्तु वायु के संचार से शिखा अपनी ऊर्ध्व गति को छोड़कर इधर-उधर अस्त-व्यस्त गमन करती है, उसी प्रकार चित्त शक्ति भी राग-द्वेषादि विकार भाव रहित अवस्था में ऊर्ध्वमुखी होती है परन्तु राग-द्वेष रूपी वायु के प्रभाव से विक्षोभ होकर अस्त-व्यस्त हो जाती है। इससे उसकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जब सूर्यरश्मि यवकाच (लेन्स) के माध्यम से केन्द्रिकरण हो जाती है तब शीघ्र ही अग्नि उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार जब मन का केन्द्री (एकाग्र) करण हो जाता है तब ध्यान रूपी अग्नि शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। वह ध्यान अग्नि सम्पूर्ण कर्म इन्धन को जला डालती है।

### “ध्यानाग्नि कर्मन्धन भस्मसात् कुरुते क्षणात्”

जैसे स्थिर-स्वच्छ पानी में मुख का दर्शन हो जाता है परन्तु वायु के माध्यम से जब पानी अस्थिर हो जाता है तब मुख का प्रतिबिंब नहीं दिखता है। इसी प्रकार जब चित्तरूपी जल निर्मल एवं स्थिर होता है, तब आत्म साक्षात्कार-आत्मावलोकन होता है। परन्तु जब मन राग-द्वेष मोह-अज्ञान आदि भावों से विक्षुब्ध होकर अस्थिर एवं मलीन हो जाता है, तब आत्म साक्षात्कार करने के लिये कर्म रूपी इन्धन को जलाकर आत्मा को विशुद्ध करने के लिये, स्मरण शक्ति, मेधा शक्ति वृद्धि के लिये, सम्पूर्ण असाध्य कार्य की सिद्धि करने के लिये ध्यान अत्यन्तावश्यक है।

ध्यान से शारीरिक तनाव, मानसिक स्नायु तनाव, ज्ञान तंतुओं का तनाव शांत हो जाता है जिससे शारीरिक-मानसिक रोग दूर होकर मानसिक, शारीरिक,

आध्यात्मिक, शान्ति प्राप्त होती है एवं चिर सुख शांति मिलती है। वर्तमान आधुनिक मनोविज्ञान में भी आरोग्य के लिये ध्यान को बहुत महत्त्व दिया है। आधुनिक-नारा है “योग भगाये रोग” अर्थात् योग से ध्यान की सिद्धि होती है और ध्यान से रोग का नाश होता है। जब आधुनिक वैज्ञानिक लोग, डॉक्टर लोग भी रोग निवारण के लिये अपने विश्वासी (पेटेंट) औषध-ऑपरेशन (शल्य चिकित्सा) से भी अनेक रोगों को दूर नहीं कर पाये एवं अनेकानेक तनाव जनित नवीन-नवीन रोग उत्पन्न हुये, तब कुछ मनोवैज्ञानिक चिकित्सक, डॉक्टर एवं वैज्ञानिक लोग प्राकृतिक चिकित्सा, ध्यान, आसन, आहार, उपवास, शारीरिक श्रम का अवलंबन लेकर अनेक रोगों का सरल-सहज, मितव्य एवं स्वल्प समय में रोग निवारण करने का लिये समर्थ हुये हैं और इनका अवलंबन अधिकाधिक ले रहे हैं।

इस प्रकार अंतरंग एवं बहिरंग तप से शरीर, मन एवं वचन तप करके शुद्ध हो जाते हैं। तप समस्त उत्थान के लिये कारण है। जो तप नहीं करता है उसके विरुद्ध चलता है, उसका पतन होना अनिवार्य है।

### (8) त्याग धर्म

पर संयोग से अशुद्ध दशा होती है और अशुद्ध दशा दुःख के लिये कारण है। संयोग से दुःख होने के कारण संयोग को मनसा, वचसा, काया से सर्वदा त्याग करना चाहिये।

आत्मा एक शुद्ध द्रव्य है, पुद्गल भी एक शुद्ध द्रव्य है परन्तु जब दोनों मिलते हैं तब दोनों ही अशुद्ध हो जाते हैं। अशुद्धता से विकृति उत्पन्न होती है, विकृति से सम्पूर्ण दुःख की परम्परा चलती है। इसलिये सुख प्राप्ति के लिये उपरोक्त क्रिया की प्रतिलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् समस्त संयोग को समस्त रूप से त्याग करना चाहिये।

**त्यागो हि परमो धर्मस्त्याग एव परं तपः।**

**त्यागादिह यशो लाभः परत्राभ्युदयो महान्॥**

त्याग ही परम धर्म है, त्याग ही परम तप है, त्याग से इहलोक में यश लाभ होता है एवं परलोक में महान अभ्युदय मिलता है।

**परोपकाराय फलंति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्याः।**

**परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकाराय सतां प्रवृत्तयः॥**

परोपकार के लिये जीवन भर वृक्ष, जीवन शक्ति प्रदायक अमृततुल्य उत्तमोत्तम फल देते हैं। परोपकार के लिये नदियाँ शीतल मधुर जल लेकर बहती हैं। परोपकार के लिये गायें अमृत समान दूध जीवन भर देती हैं। इसी प्रकार परोपकार के लिये सज्जन सतत प्रयत्नशील रहता है।

सम्पूर्ण मनुष्य समाज, वनस्पति एवं पशु समाज द्वारा ही जीवित है। समस्त आहार सामग्री उनसे ही प्राप्त करके सुख चैन से जीवन यापन कर रहा है। यदि वे त्याग करना छोड़ देते तो मनुष्य समाज जीवित रहता या नहीं यह भी एक बड़ा प्रश्न हो जाता। यदि जीवित रहता तो उसका आकार प्रकार कुछ अन्य ही होता। इसलिए मनुष्य समाज भी इस निम्न श्रेणीय प्राणी जगत से उस आदर्श को अपनाकर स्व-पर उन्नति के लिये सह अस्तित्व एवं संवर्द्धन के लिये त्याग धर्म को जीवन में उतारना चाहिये।

जो कूप अपना पानी दूसरों को देता है, उस कुयें में शीतल, निर्मल, (स्वच्छ) पानी अधिकाधिक भरता रहता है, जिस कुयें से पानी लेना छोड़ देंगे तो उस कुयें का जल अस्वच्छ हो जायेगा; दूषित-खराब हो जायेगा, उसमें कीड़े पड़ जायेंगे। अन्ततोगत्वा वह कुआँ ही एक दिन जल हीन हो जायेगा। इसी प्रकार जो जितना त्याग करता है, उसको उतना ही मिलता है।

*So much give so much gain, no much give no much gain.*

अधिक देने से अधिक मिलता है। कुछ नहीं देने पर कुछ नहीं मिलता है। बादल त्याग करता है इसलिये बादल ऊपर रहता है। उसे समुद्र ग्रहण करता है इसलिये समुद्र में अगाध पानी होते हुये भी समुद्र का स्थान नीचे है। बादल त्याग करने से उसका पानी पवित्र है, मधुर है। किन्तु जल समुद्र की संगति करने से स्वयं भी समुद्र की तरह लवण युक्त होता है। इसी तरह और एक उदाहरण देखिये—तराजू के जिस भाग में वस्तु रखते हैं, वह भाग नीचे—नीचे चला जाता है और जो भाग खाली रहता है, वह भाग ऊपर—ऊपर चढ़ता जाता है।

अभी तक मानव समाज की जो उन्नति हुई है वह सब त्याग का ही फल है। त्यागी—वीरों ने धन, जन—जीवन, समंय देकर मनुष्य समाज को उन्नति के शिखर पर पहुंचाया है। धार्मिक क्षेत्र में त्याग के माध्यम से कला, संस्कृति, आदर्श के प्रतीक स्वरूप अनेक मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर आदि बने हैं। सामाजिक क्षेत्र में अनेक धर्मशालायें, कूप, तालाब, औषधालय, अनाथाश्रम बनकर नर—नारायण

की सेवा कर रहा है। शैक्षणिक क्षेत्र में अनेक स्कूल—विद्यालय, उच्च विद्यालय विश्व विद्यालय, छात्रालय बनाकर, ज्ञान पिपासु मनुष्य के लिये ज्ञानामृत पिलाकर तृप्त करा रहे हैं। इससे सिद्ध होता है—दान के बिना मनुष्य, मनुष्य समाज यहाँ तक की प्राणी समाज भी जीवित नहीं रह सकता है इसलिये प्रत्येक प्राणी का परम कर्तव्य है कि यथा शक्ति, यथा भक्ति, दान देकर स्व-पर, समाज, राष्ट्र का कल्याण करें।

### (9) अकिञ्चन्य धर्म

मेरे आत्म द्रव्य को छोड़कर अन्य समस्त जड़, चेतन द्रव्य एवं उनकी सम्पूर्ण पर्यायें मेरी नहीं हैं इसीलिये मेरे वे कभी नहीं हो सकते हैं। मेरा धर्म अकिञ्चन्य धर्म है। बाह्य स्थूल भौतिक द्रव्य तथा चेतन द्रव्य, मेरे से अत्यंत पृथक् होने से वे कभी मेरे नहीं हो सकते हैं। इतना ही नहीं मेरे आत्मा के साथ क्षीर—नीरवत् मिला हुआ यह भौतिक शरीर भी मेरा नहीं है। इससे भी सूक्ष्म मन में उत्पन्न होने वाले राग—द्वेष—मोह आदि विकार भाव भी मेरे आत्मा स्वभाव नहीं है। इस प्रकार जो स्वतंत्र—स्वाधीन, शुद्ध मेरी आत्मा है, वही मेरा सर्वस्व है इस प्रकार आत्मा ही अकिञ्चन्यमय धर्म स्वरूप है।

### 10. ब्रह्मचर्य धर्म

सम्पूर्ण बाह्य द्रव्यों में रमण रूप ममत्वरूप या आसक्तिरूप संयोग संग को त्याग करके शुद्ध चिन्मय स्वरूप अनन्त सुख के धाम स्वरूप ब्रह्मरस में लीन होना ब्रह्मचर्य धर्म है।

यह ब्रह्मचर्य धर्म जगत् पूज्य है। ब्रह्मचर्य धर्म में अन्यान्य समस्त धर्म समाहित हैं, जैसे आकाश में समस्त द्रव्य समाहित हैं, इसी प्रकार ब्रह्म + चर्य = ब्रह्मचर्य, (आत्मा में रमण करना) में सम्पूर्ण मूलगुण—उत्तरगुण अर्थात् अन्यान्य गुण समाहित हैं।

### अभ्यास प्रश्न (परि.-2)

- (1) उत्तम क्षमा धर्म किसे कहते हैं?
- (2) उत्तम मार्दव धर्म का वर्णन करो।
- (3) आर्जव धर्म का वर्णन करो।
- (4) उत्तम शौच धर्म कब होता है?

- (5) सत्य धर्म का सविस्तार वर्णन करो।
- (6) उत्तम संयम धर्म के भेद एवं स्वरूप का वर्णन करो।
- (7) तप धर्म किसे कहते हैं?
- (8) बहिरंग तप का सविस्तार वर्णन करो।
- (9) अंतरंग तप का सविस्तार वर्णन करो।
- (10) त्याग धर्म के महत्व पर प्रकाश डालो।
- (11) अकिञ्चन्य धर्म किसे कहते हैं?
- (12) ब्रह्मचर्य धर्म का वर्णन करो।

### परिच्छेद - 3

## मोक्ष मार्ग (रलत्रय धर्म)

सम्यक्श्रद्धान्, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक्चरित्र धर्म है; क्योंकि ये तीनों मिलकर मुक्ति का मार्ग बनता है। मिथ्या श्रद्धा-ज्ञान एवं चारित्र अर्धर्म हैं, संसार का कारण हैं, बन्धन का कारण हैं।

यह रलत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र) धर्म है एवं मोक्षमार्ग है, तीनों आत्मस्वरूप हैं इसीलिये आत्मा ही मोक्षमार्ग है।

रलत्रय को व्यवहार से मोक्षमार्ग कहते हैं, परन्तु निश्चय से आत्मा ही मोक्षमार्ग है एवं स्वयं आत्मा ही मोक्ष है।

जैसे—मंजिल पर चढ़ने के लिये सीढ़ी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मोक्ष महल पर आरूढ़ होने के लिये मोक्षमार्ग रूपी सीढ़ी की आवश्यकता होती है। सीढ़ी के दो पैर के लिये दो लम्बी लकड़ी एवं बीच की आड़ी लकड़ी—सोपान के लिये छोटी—छोटी लकड़ियां चाहिये। ये तीनों मिलकर ही सीढ़ी बन जाती है। एक या दो से नहीं बनती बल्कि तीनों चाहिये। इसी प्रकार मोक्षमार्ग के लिये उपरोक्त तीनों आवश्यक हैं, एक या दो से मोक्षमार्ग नहीं बना है। सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान दो सीधी लकड़ी के समान हैं, तो सम्यक्चरित्र आड़ी लकड़ी (छोटी—छोटी लकड़ी) के समान हैं। जैसे सीढ़ी के मध्यवर्ती सोपान के लिये दोनों पैर रूपी आलम्बन

जरूरी हैं, उसी प्रकार सम्यक्चरित्र के लिये यथार्थ श्रद्धान् एवं ज्ञान चाहिये। जिस प्रकार भात बनाने के लिये चावल, अग्नि, पानी नितान्त आवश्यक हैं एवं एक के भी अभाव में भात नहीं बन सकता है उसी प्रकार मोक्ष के लिये रलत्रय की आवश्यकता है।

सम्यग्दर्शनादि तीनों को रलत्रय कहते हैं। जिस प्रकार रल भौतिक द्रव्यों में मूल्यवान् श्रेष्ठ एवं दुर्लभ है, इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् में इन तीनों का मूल्य सबसे श्रेष्ठ है इसलिये इनको रलत्रय कहते हैं। यह रलत्रय बात्य भौतिक जगत् में नहीं है, परन्तु आध्यात्मिक जगत् में अर्थात् आत्मा में है। जैसे बर्फ के लिये पानी साधन है और वह साधन ही परिणमन करके बर्फ रूप में परिणमन करता है, उसी प्रकार मोक्ष के लिये व्यवहार से ये साधन हैं, परन्तु अन्त में जाकर रलत्रय ही मोक्षरूप बन जाता है। रलत्रय, आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्यों में अर्थात् बात्य अजीव द्रव्यों में नहीं होने के कारण स्वयं आत्मा ही रलत्रय स्वरूप है एवं मोक्षमार्ग स्वरूप है।

जैसे—एक बन्दी, विश्वास करता है— मैं बन्धन—मुक्त होऊँगा। तब वह किसी उपाय से उन बन्धन को काटता है एवं मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार कर्मों से बँधा हुआ जीव विश्वास (श्रद्धा) करता है कि मैं कर्मों (संस्कारों) से बँधा हुआ हूँ। बन्धन को काटने से मैं स्वतंत्र सुख को प्राप्त करूँगा एवं किस प्रकार बन्धन मुक्त होऊँगा इस प्रकार जानना ज्ञान है एवं उस बन्धन को काटने के लिये प्रयत्न करना चारित्र है इसी को ही मोक्षमार्ग कहते हैं। मोक्ष के लिये केवल श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र नहीं चाहिये परन्तु लौकिक एवं अलौकिक समस्त कार्य के लिये भी ये तीनों उपाय केवल आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हैं।

### रलत्रय की परिभाषा—

सत्य की प्रतीति या विश्वास (आस्था) सम्यग्श्रद्धान् है। तत्त्व का यथार्थ निश्चय करना उत्तम ज्ञान है। स्व—स्वरूप में आचरण करना उत्तम चारित्र है। इसके विपरीत रूप से अर्धर्म होता है अर्थात् सत्य की विपरीत प्रतीति, अयथार्थ निर्णय, स्व—स्वरूप से विपरीत आचरण अर्धर्म है।

### सम्यग्दर्शन की परिभाषा—

मोक्ष मार्ग, मोक्ष मार्गी, मोक्ष तत्त्व, सत् शास्त्रों के ऊपर विश्वास रखना, यथार्थ दर्शन है और वह सम्यग्दर्शन आठ अंग सहित एवं मूढ़ता रहित होता है। मोक्ष

मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मोक्ष मार्ग अर्थात् साधु परमेष्ठी, मोक्ष तत्त्व अर्थात् शुद्ध आत्म तत्त्व, सत् शास्त्र अर्थात् सर्वज्ञ वीतराग द्वारा प्रतिपादित, सर्व हितकारी अहिंसात्मक शास्त्र के ऊपर जो विश्वास (श्रद्धा) है, उसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन तीन मूढ़ता रहित अर्थात् लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता और गुरु मूढ़ता रहित, अष्ट अंग सहित अर्थात् (1) निःशंकित (2) निःकांक्षित (3) निर्विचिकित्सा (4) अमूढ़दृष्टि (5) उपगूहन (6) स्थितिकरण (7) वात्सल्य (8) प्रभावना अंग सहित होता है।

### तीन मूढ़ता

(1) लोक मूढ़ता— धर्मभाव से नदी, समुद्र में स्नान करना, पत्थर, वृक्ष, दीवार, ईट, देहरी, सर्प, गाय, सिलोडा आदि को पूजना लोक मूढ़ता है। धर्म मानकर पहाड़ से गिरकर मरना, नदी या समुद्र में डूबकर मरना, तीर्थ क्षेत्र में आत्म हत्या करना, जमीन के अन्दर बैठकर मिट्टी से शरीर को ढांककर आर्त-रौद्र ध्यान में मरना, अग्नि में कूदकर मरना ये लोक मूढ़ता है। कांटे के ऊपर सोना, चारों तरफ अग्नि जलाकर बीच में बैठना, मूढ़ता सहित विभिन्न काय क्लेश करना भी लोक मूढ़ता है। धर्म मानकर बलि आदि देना मूढ़ता है। पति के मरने के पश्चात् सती बनने के लिये अग्नि में गिरकर मरना भी लोक मूढ़ता है। इससे धर्म नहीं होता है, इसे धर्म मानना ही मूढ़ता है।

(2) देव मूढ़ता— राग-द्वेष-मोह विकार भाव से सहित स्त्री परिवार, अस्त्र-शस्त्र, राग-रंग सहित देवों को वर आदि अभिलाषा से पूजना देव मूढ़ता कहा जाता है। रागी-द्वेषी, स्त्री सहित, अस्त्र-शस्त्रधारी सच्चे देव नहीं होते हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप, मोह, विकार भाव से रहित, काम विकार से रहित, स्त्री-परिवार से रहित, अस्त्र-शस्त्र से रहित सच्चे देव होते हैं। इस प्रकार के भगवान को पूजना मूढ़ता नहीं है, परन्तु सच्ची श्रद्धा-भक्ति एवं गुणानुराग है।

(3) गुरु मूढ़ता— रागी-द्वेषी, स्त्री-कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति, अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह सहित, मद्य, मांस आदि व्यसनों के सेवी, गांजा, तम्बाकू आदि का सेवन करने वाले तथा विभिन्न वस्त्र धारण करके अपने आपको साधु (श्रमण) समझने वाले धर्म-पाखण्डियों को गुरु मानकर पूजन-सत्कार करना, दक्षिणा-देना, गुरु मूढ़ता है। इस प्रकार मूढ़ता को धर्म में व धर्म नीति में कहीं भी स्थान नहीं है। धर्म तो एक निर्मल आध्यात्मिक सोपान है। उस आध्यात्मिक सोपान में क्रमशः

चढ़ने पर एक दिन यह आत्मा अपने आपको पा लेता है, यहीं उसकी पूर्णता होती है, जिसे सिद्ध कह सकते हैं। अतः उस सिद्धत्व की प्राप्ति के लिये अपनी कल्पना से स्वच्छन्द आचरण करने वाले साधु की उपासना करना ही गुरु मूढ़ता है जो कि अधर्म है।

### सम्यग्दर्शन के आठ अङ्ग

#### (1) निःशंकित अंग-

धर्म में, धर्म के फल में, सत्य में शङ्का नहीं करना निःशंकित अङ्ग है। धर्म से सदा सुख ही मिलता है और धर्म ही शरण है, इस प्रकार शङ्का नहीं रखते हुये श्रद्धान करना निःशंकित अंग है।

#### (2) निःकांक्षित अंग-

धर्म करके उससे ख्याति-पूजा-लाभ की भावना नहीं करना ही निःकांक्षित अंग है।

#### (3) निर्विचिकित्सा अंग-

गुणी ज्ञानियों के देखकर उनकी ख्याति-पूजा सुनकर धृणा नहीं करना किन्तु गुणों में आदर रखते हुये उनका सम्मान करना निर्विचिकित्सा अंग है।

#### (4) अमूढ़दृष्टि अंग-

सत्य की परीक्षा करके ही उसको स्वीकार करना अमूढ़दृष्टि अंग है।

#### (5) उपगूहन अंग-

किसी धर्मात्मा व्यक्ति से किसी कारणवशात् प्रमाद या अज्ञानता से या अन्य कारणों से भूल हो जाने पर उसको दूसरों के सामने प्रकट नहीं करना उपगूहन अंग है।

#### (6) स्थितिकरण अंग-

किसी कारणवश धर्म मार्ग से च्युत धर्मात्मा को पुनः धर्म मार्ग में स्थित करना स्थितिकरण है।

#### (7) वात्सल्य अंग-

निःस्वार्थ भाव से धर्म प्रीति से धर्मात्माओं से गो-वत्स के समान प्रेम करना वात्सल्य अंग है।

#### (8) प्रभावना अंग-

सर्वजनहित के लिये सत्य धर्म का ज्ञान करना, प्रशिक्षण शिविर लगाना, धर्मोपदेश देना, धर्मात्मा पुरुषों के आने वाले कष्टों को आहार आदि दान देकर दूर करना प्रभावना अंग है।

**सम्यग्ज्ञान—**

**श्रद्धानं सहित ज्ञानं येन आत्मा विशुद्ध्यते।**

**चारित्र साधकः ज्ञानं सुज्ञानं आत्म विज्ञानम्॥**

सम्यग्दर्शन सहित जो आत्म विशुद्धि का कारण है तथा चारित्र का साधक है ऐसे आत्म विज्ञान को सुज्ञान कहते हैं। श्रद्धान रहित विपुल ज्ञान सुज्ञान नहीं है परन्तु श्रद्धान सहित किंचित् भी ज्ञान सुज्ञान है। क्योंकि श्रद्धान सहित ज्ञान से आत्म विशुद्धि होती है। जिस ज्ञान से आत्म विशुद्धि नहीं होती है, उसको सम्यग्ज्ञान नहीं कह सकते हैं। यह ज्ञान चारित्र के लिये बाधक है। आत्म विज्ञान को सुज्ञान कहते हैं। आत्म ज्ञान रहित ज्ञान कुज्ञान है। सुज्ञान ही प्रमाण है।

सम्यग्ज्ञान के पांच भेद हैं— (1) मतिज्ञान (2) श्रुत ज्ञान (3) अवधि ज्ञान (4) मनः पर्यय ज्ञान (5) केवल ज्ञान।

**सम्यग्चारित्र—**

सुचारित्र पाप कर्मों से रहित होता है। आत्मामृत रूपी रस में लीन होना सुचारित्र है। यह सुचारित्र रलत्रय में सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि यह साक्षात् मुक्ति के लिये साधन है। व्यवहार से पांचों पापों का त्याग करके निश्चय से आत्मा का रसास्वाद लेना सम्यक् चारित्र है। यह सुचारित्र जहाँ पर है वहाँ पर सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान निश्चित रहेगा ही, किन्तु जहाँ पर सम्यग्दर्शन एवं ज्ञान है वहाँ पर यह चारित्र हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। जैसे बंदी का श्रद्धान है कि मैं बंधन में हूँ, बंधन काटने पर मैं मुक्त होऊँगा, किन्तु बंधन नहीं काटने के कारण अभी मुक्त नहीं हूँ, परन्तु जहाँ पर वह बंधन को काटकर मुक्त हुआ, उसका श्रद्धान-ज्ञान रहता ही है। सम्यग्दर्शन की पूर्णता क्षायिक सम्यग्दर्शन की अपेक्षा चतुर्थ गुणस्थान में हो जाती है, तो भी पूर्णरूप से बन्धन मुक्ति नहीं है, मात्र वह दृष्टि मुक्त है। सम्यग्ज्ञान की पूर्णता केवलज्ञान की अपेक्षा तेरहवें गुणस्थान में हो जाती है, परन्तु वहाँ पर भी पूर्णरूप से मुक्ति नहीं है, क्योंकि अभी शेष अधातिया कर्म तथा नोकर्म का सद्भाव है। किन्तु जीवन मुक्त है, परन्तु जब चौदहवें गुणस्थान के अन्त में चारित्र की पूर्णता होती है, तत्क्षण ही पूर्णरूप से बन्धन रहित होकर मुक्ति का पात्र होता है। तब वह सिद्धि, निरंजन, शाश्वतिक मुक्ति सुख को प्राप्त होता है। इसी कारण रलत्रय में सम्यग्चारित्र श्रेष्ठ है एवं मोक्ष के लिये साक्षात् उपादान कारण रलत्रय

में सम्यक्चारित्र श्रेष्ठ है एवं मोक्ष के लिये साक्षात् उपादान कारण है। शेष दो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, चारित्र के लिये साधक हैं, अतः मोक्ष मार्ग में इसे परम्परा से मोक्ष का कारण भी कह सकते हैं।

**अभ्यास प्रश्न (परि.-3)**

1. सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र धर्म क्यों हैं एवं मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र अधर्म क्यों हैं?
2. आत्मा ही मोक्षमार्ग क्यों हैं?
3. मोक्ष के लिये रलत्रय की आवश्यकता क्यों है?
4. रलत्रय किसे कहते हैं एवं क्यों?
5. सम्यक्दर्शन की क्या परिभाषा है?
6. तीन मूढ़ताओं के स्वरूप वर्णन करो।
7. सम्यक्दर्शन के आठों अंग का स्वरूप लिखो।
8. सम्यक्ज्ञान का वर्णन करो।
9. सम्यक् चारित्र का वर्णन करो।

**परिच्छेद - 4****साधु की आचार संहिता**

सुख, शांति, स्वातंत्र्य—सुख के इच्छुक गृहस्थाश्रमी और भी आगे बढ़ना चाहते हैं तो समस्त बंधनों को काटकर विहंग (स्वतंत्र पक्षी) के सामने स्वतन्त्र होकर आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने के लिये लालायित हो उठता है। वह आत्म-साधन के लिये साधु चारित्र का अवलंबन लेता है।

**सर्वसंग विवर्जित, सर्वपापमलमुक्तः।**

**अष्टविंशतिगुणयुक्तः साधुस्य साधुचारित्रः॥**

अंतरंग—बहिरंग समस्त ग्रन्थियों से रहित सर्व पापों से विमुक्त 28 मूलगुण सहित साधु का चारित्र होता है।

अंतरंग परिग्रह— 1. मिथ्यात्व 2. क्रोध 3. मान 4. माया 5. लोभ 6. हास्य

7. रति 8. अरति 9. शोक 10. भय 11. जुगुप्सा 12. पुरुषवेद 13. स्त्री वेद 14. नपुंसक वेद।

**बहिरंग परिग्रह—** 1. क्षेत्र 2. वास्तु 3. हिरण्य 4. सुवर्ण 5. धान्य 6. धन 7. दासी, 8. दास 9. कृप्य 10. भाण्ड।

**28. मूलगुण—** 1. पांच महाव्रत 2. पांच समिति 3. पांच इन्द्रिय निरोध 4. छह आवश्यक क्रिया 5. सात विशेष गुण।

(1) **पांच महाव्रत—** 1. अहिंसा महाव्रत 2. सत्य महाव्रत 3. अचौर्य महाव्रत 4. ब्रह्मचर्य महाव्रत 5. अपरिग्रह महाव्रत।

(2) **पांच समिति—** 1. ईर्या समिति 2. भाषा समिति 3. एषणा समिति 4. आदान निक्षेपण समिति 5. उत्सर्ग समिति।

(3) **पांच इन्द्रिय निरोध—** 1. स्पर्शन इन्द्रिय 2. रसना इन्द्रिय 3. ग्राणेन्द्रिय 4. चक्षु इन्द्रिय 5. कर्ण इन्द्रिय। उपरोक्त पांच इन्द्रियों का निरोध इन्द्रिय निरोध है।

(4) **छह आवश्यक क्रिया—** 1. समता 2. स्तुति 3. वंदना 4. प्रतिक्रमण 5. प्रत्याख्यान 6. कायोत्सर्ग।

(5) **सात विशेष गुण—** अचेलक गुण(नग्नत्व) 2. रिथित भोजन 3. एकभुक्त भोजन 4. अदंत धावन 5. केशलोंच 6. अस्नान 7. भूमि शयन।

### उक्तंच

वद समिदिदियरोधो लोचो, अवासमयचेत्तमण्हाणं।

खिदिसयणमदंतवणं, ठिदिभोयणमेयभत्तंच॥

पुस्तक का आकार बढ़ जाने के भय से मुनि चारित्र संबंधी सम्पूर्ण वर्णन यहाँ नहीं कर रहे हैं। इस विषय के विशेष ज्ञान के लिये जिज्ञासु व्यक्ति मूलाचार-मूलाराधना आदि आचार शास्त्रों को देखने का कष्ट करें। यहाँ कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण विषय के बारे में ही प्रकाश डालेंगे। कुछ विषय का वर्णन संदर्भ के अनुसार पहले किया गया है।

### पांच समिति—

**समिति—** सावधानी पूर्वक जीवों का संरक्षण करते हुए धार्मिक कार्य करना उठना-बैठना आदि को समिति कहते हैं। असावधानी पूर्वक, प्रमाद सहित, कषाय युक्त होकर कार्य करने से हिंसा होती है। सम्पूर्ण विश्व में सूक्ष्म-स्थूल-चर-अचर

जीव भरे हैं। जब मुनि लोग आहार-विहार करते हैं तब क्या उनसे जीव धात नहीं हो सकता है? इस प्रकार प्रश्न होना सहज है। जिस प्रकार स्वयं गौतम गणधर ने महावीर स्वामी से प्रश्न किया था।

. कथं चरे कथं चिद्दे कथमासे कथं सये।

कथं भुजेज्ज भासेज्जं कथं पावं ण बज्जदि॥

(मूलाचार)

गौतम गणधर पूछते हैं— हे भगवान! कैसा आचरण करें, कैसे ठहरें, कैसे बैठें, कैसे सोयें, कैसे भोजन करें एवं किस प्रकार बोलें जिससे पाप नहीं बँधे? महावीर भगवान उत्तर देते हैं—

जदं चरे जदं चिद्दे जदमासे जदं सये।

जदं भुजेज्ज भासेज्जं एवं पावं ण बज्जदि॥

हे! गौतम गणधर यत्न पूर्वक गमन करें, यत्न पूर्वक खड़े हो, यत्न पूर्वक बैठें, यत्न पूर्वक सोयें, यत्न पूर्वक आहार करें, और यत्न पूर्वक बोलें, इस तरह करने से पाप बंध नहीं होता। यह है समिति का रहस्य एवं हृदय।

(1) **ईर्या समिति—** सूर्य के प्रकाश में मन को स्थिर करके इधर-उधर नहीं देखते हुए सन्मुख चार हाथ दूरी को देखते हुए देव वंदना, विद्या अध्ययन, स्वास्थ्य संपादन, समाधि की खोज के लिये जीवों को बिना धात करते हुए गमन करना ईर्या समिति है।

इससे सिद्ध होता है कि, बिना उत्तम अभिप्राय से इधर उधर घूमना नहीं चाहिये क्योंकि उससे वृथा समय एवं शक्ति नष्ट होती है और जीवों का धात होता है। ईर्यापथ शुद्धि पूर्वक चलने से स्वयं की रक्षा-कंकड़-पथर-गङ्गा-कांटा आदि से भी होती है।

(2) **भाषा समिति—** हित, मित, प्रिय समयानुकूल, आगम-अविरोधक बोलना भाषा समिति है। इससे झगड़ा आदि नहीं होता है। इससे गम्भीरता एवं भ्रद्रता-विनय गुण प्रगट होता है।

(3) **एषणा समिति—** क्षुधा रोग उपशमनके लिये, ध्यान-अध्ययन, षडावश्यक क्रिया, सेवा आदि धार्मिक क्रियाओं को पालने के लिये जो शुद्ध शाकाहारी भोजन, दूसरों को कष्ट नहीं देते हुए, सीमित प्रमाण से, दोषों को नहीं लगाते हुए भोजन

करना एषणा समिति है। सद्गृहस्थ स्वेच्छा पूर्वक, नवधा भक्ति पूर्वक मुनि को स्वयं आह्वान करते हुए भोजन देता है। उस समय मुनि लोग दीन भाव रहित, याचना भाव रहित होते हुए भोजन ग्रहण करते हैं। इससे सिद्ध होता है आहार दाता के स्वेच्छा, भक्ति पूर्वक आहार देने पर मुनि को धर्म के लिये दीनता—हीनता, याचक प्रवृत्ति से रहित होते हुए आहार करना चाहिए।

(4) आदान निष्केपण समिति— धर्म साधन के उपकरणों को सावधानी पूर्वक देखकर एवं कोमल मयूर पिंडी से जीवों को उस उपकरण से सावधानी पूर्वक पृथक् करके उपकरण को उठाना एवं जहाँ रखना है उस स्थान को भी देखकर एवं जीवों को पिंडी से हटाकर उस उपकरण को रखने को आदान—निष्केपण समिति कहते हैं।

इससे सिद्ध होता है उपकरण से रहित अनावश्यक वस्तुओं को उठाना रखना भी नहीं चाहिए। क्योंकि उससे समय एवं शक्ति का दुरुपयोग होता है।

(5) उत्सर्ग समिति— ग्राम, नगर से दूर एकांत विस्तीर्ण निर्जन्तुक एवं बाधा रहित स्थान की पिंडी से परिमार्जन करके मल—मूत्र का विसर्जन करने को उत्सर्ग समिति कहते हैं।

इससे सिद्ध होता है मल—मूत्र ग्राम के समीप भी विसर्जन नहीं करना चाहिए। क्योंकि अयोग्य स्थान में मलमूत्र विसर्जन करने से जनता को कष्ट होता है, ग्राम नगर आम स्थान अस्वच्छ हो जाता है, वातावरण दूषित हो जाता है जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं एवं फैलते हैं। अनुपयुक्त स्थान एवं मनुष्य जहाँ देखते हैं वैसे स्थान में मल—मूत्र विसर्जन करने से निंदा होती है, ग्लानि उत्पन्न होती है और आयु क्षय भी होती है।

वर्तमान भारत में गृहस्थ लोग घर की गन्नी वस्तुएँ यहाँ तक कि मल—मूत्र भी आम रास्ता या राज—मार्ग में निःसंकोच होकर फैकते हैं। चाय पीकर चाय का प्याला रास्ते में ही फैक देते हैं, चाट खाकर पत्ते को रास्ते में ही फैकते हैं, पान खाकर पानपीक यत्र तत्र रास्तादि में थूकते हैं। बीड़ी, सिगरेट पीकर झूठन के शेष भागको जहाँ तहाँ फैकते हैं। कफ को जहाँ तहाँ थूकते हैं। यह सब असभ्यता, अनागरिकता एवं अशिक्षितपने का परिचायक है। हमारे देशवासी वर्तमान आक्षरिक शिक्षित थोड़े बहुत हुए हैं परन्तु यथार्थ से नैतिक शिक्षा से दूर हट रहे हैं। बाहर बगुला के समान हैं परन्तु अन्तरंग में कौवे से भी काले हैं। महात्मा गांधी को जातीय

पिता एवं महा आदर्श पुरुष मानते हुए एवं उनका गुण गान करने में नहीं थकते हुये भी उनके आदर्श का एक कण भी अनुकरण में कोई लाते हैं क्या? महात्मा गांधी, विनोबा भावे केवल स्वयं का संडास—गृह स्वच्छ नहीं करते थे किन्तु गाँव गांव में घूम कर वहाँ के रास्ते, तालाब, संडास—गृह भी स्वच्छ करते थे। क्या आज उस आदर्श को हृदय—साक्षी पूर्वक विचार करके इन्हें कोई अनुकरण करता है? देश में अस्वच्छता फैलाकर देश की पवित्रता नष्ट कर रहे हैं। विदेश का अंधानुकरण करते हुए उनके फैशन, भोग—विलासता, अनैतिकता, कामुकता आदि दुर्गुणों को ग्रहण कर रहे हैं परन्तु विदेश में जो स्वच्छता, देश—प्रीति, प्रामाणिकता, स्वावलंबनता आदि गुण हैं उसका क्या अनुकरण कर रहे हैं?

### पंचेन्द्रिय निरोध—

इन्द्रियों की अन्यथा प्रवृत्ति को अर्थात् दुष्ट—प्रवृत्ति को निरोध करके सत् प्रवृत्ति में उनको लगाना इन्द्रिय निरोध है।

### (1) स्पर्शन इन्द्रिय निरोध

स्पर्शन इन्द्रिय, मृदु स्पर्शादि को चाहती है। एवं विषय की प्राप्ति के लिये नैतिक बंधन को भी तोड़ देती है जिससे कि अनेक दुष्प्रवृत्ति फैलती हैं। इस प्रकार अनीति से बचने के लिये शक्ति संरक्षण के लिए एवं शक्ति सदुपयोग के लिये स्पर्शन इन्द्रिय को यथार्थ कार्य में विनियोग करना चाहिये। स्पर्शन इन्द्रिय (उपर्युक्त इन्द्रिय) के वशवर्ती होकर महान् शक्तिशाली जंगल में स्वच्छन्द विचरण करने वाला मत्त हस्ती भी बध्यन में पड़कर के मनुष्य की आज्ञा अनुसार चलता है, बैठता है और अनेक काम करता है।

### (2) रसना इन्द्रिय निरोध

रसना (जिव्हा) इन्द्रिय, मधुर स्वादिष्ट रस को चाहती है। रसना इन्द्रिय के वशवर्ती होकर जीव मांस, अण्डा, मछली आदि अभक्षों का भी भक्षण करता है। जिससे कि, महान् पाप के वशवर्ती होकर रस लोलुपी जीव असमय में भी अति भोजन करता है। पानी में स्वच्छन्द विचरती हुई मछली कांटे में लगे खाने को खाने के लिये दौड़ती है जिससे वह जीवन ही गँवा देती है। वर्तमान जनता जिह्वा इन्द्रिय के वशवर्ती होकर घर का शुद्ध, कम खर्चीला भोजन करना छोड़कर अशुद्ध, अधिक खर्चीला, बासा आहार होटल में करता है। होटल में स्वच्छता नहीं रहती है। बचा

हुआ बासी आहार भी मिलाकर पुनः ताजा आहार बनाकर दे देते हैं, जिस पात्र में रोगी, व्यसनी, पापी आदि भोजन करते हैं उस पात्र को भी स्वच्छता पूर्वक नहीं धोते हैं, उस पात्र में ही दूसरों को भोजन देते हैं जिससे रोग फैलता है। होटल में खाद्य वस्तुओं को ढंक कर भी नहीं रखते हैं जिससे मक्खी भिन-भिन करती है और उसमें ही टट्टी पेशाब करती हैं। धूल आदि गिरकर के उसमें ही जम जाते हैं। बनाने वाले भी स्वच्छता से नहीं रहते हैं। बनाते बनाते उनका पसीना भी भोजन में गिर जाता है, यहाँ तक कि नाक आदि छिड़कने पर भी हाथ नहीं धोते हैं। जिस पात्र में भोजन बनाते हैं उस पात्र को भी स्वच्छता से नहीं धोते हैं, मात्र परोसने वाले पात्र ऊपर से ही चमकीला रहता है। जिस पात्र में सब लोग खाते हैं उस पात्र को एक बाल्टी के पानी में डुबा देते हैं। वही गन्दी बाल्टी के पानी में ही अन्य रोगी-कुष्ठी-भिखारी-व्यक्तियों के पात्र को भी डुबाकर उस पात्र में पुनः परोसते हैं। विचार करिये कि वह भोजन पात्र किस प्रकार शुद्ध है? इस प्रकार धृणित, गन्दगी, सब की झूठन से मिला हुआ, मद्य, मांस, कंद-मूल बासी आहार से युक्त भोजन खाने से आरोग्य के पतन के साथ-साथ नैतिक एवं धार्मिक पतन हो जाता है। केवल जिह्वा इन्द्रिय को लगाम में रखने से उक्त अनर्थ नहीं हो सकते हैं।

### (3) ग्राण इन्द्रिय निरोध

नासिका सुगन्ध को चाहती है। उसके लिये जीव सुगन्धित इत्र, सेंट, स्नो, पावडर आदि इस्तेमाल करता है। केवल ग्राण इन्द्रिय के वशवर्ती होकर जो भ्रमर लकड़ी को भी काट सकता है वह कोमल कमल में बन्द होकर प्रिय प्राण को भी गवां देता है। वर्तमान में सेंट आदि बनाने के लिए अनेक प्रकार के जीवों को मारकर उनके अवयवों से सेंटादि बनाया जाता है। इस प्रकार सुगन्धित द्रव्यों के प्रयोग से हिंसा का भी दोष लगता है। कृत्रिम खाद्य वस्तुओं को सुगन्धित बनाने के लिए हिंसात्मक, रासायनिक द्रव्य मिलाते हैं। इस प्रकार की वस्तुओं के सेवन से स्वास्थ्य के साथ-साथ धर्म को भी धक्का पहुँचता है।

### (4) चक्षु इन्द्रिय निरोध

आँख, मनोहर, सुन्दर वर्ण को देखना चाहती है। चक्षु इन्द्रिय के वशवर्ती होकर पतंग अग्नि से आकर्षित होकर अग्नि में जलकर राख हो जाता है। वर्तमान में

चक्षु इन्द्रिय को पुष्ट करने के लिए अनेकानेक अश्लील, काम उत्तेजक एवं अनैतिक सिनेमा का प्रचार-प्रसार हो रहा है। अभी तो सिनेमा देखना मानो जनता का एक अनिवार्य कर्तव्य ही हो गया है। सिनेमा देखने से समय का दुरुपयोग, अर्थनाश, नैतिक पतन, कुसंस्कारक प्रशिक्षण होता है एवं आँख, स्वास्थ्य को भी क्षति पहुँचाती है। सिनेमाहाल में धूम्रपान होता है एवं उपयुक्त प्राण वायु नहीं मिलने से स्वास्थ्य को महती क्षति पहुँचती है एवं संक्रामक रोग फैलता है। चक्षु इन्द्रिय के वशवर्ती होकर रुपये देकर कुसंस्कार एवं रोग को खरीदते हैं। वर्तमान में जो कुसंस्कार फैला हुआ है, नैतिक पतन पर हो रहा है, चोर बाजारी, (दो नम्बर का काम) डाकू बनने का प्रशिक्षण मिल रहा है, शील का सत्यानाश हो रहा है उनका उत्तरदायित्व बहु-अंश में चित्र मन्दिर (सिनेमा गृह) हैं। सिनेमा मानो एनिमा है। जैसे-पेट स्वच्छ करने के लिये एनिमा लिया जाता है उसी प्रकार धार्मिक, नैतिकभावों को हृदय से निकालने लिए सिनेमा रूपी एनिमा लिया जाता है। इस सिनेमा रूपी एनिमा से धार्मिक, नैतिक सदाचार हृदय से निकल जाते हैं। सिनेमा से फैशन, आराम-खोर, बाबू-चाल, टीपटॉप, वैदेशिक कुत्सित रीति-रिवाज आदि का प्रशिक्षण मिलता है।

किसी भी साधन से रचनात्मक एवं विध्वंसात्मक कार्य मनुष्य स्वयं विवेक से कर सकता है। सिनेमा के माध्यम से नैतिक, शैक्षणिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि प्रशिक्षण दिया जाता है तो सिनेमा मनुष्य समाज के लिए वरदान स्वरूप होता जैसे-वर्तमान में टी.वी. में रामायण चलती है। वह रामायणादि नैतिक, विनय, राजनीति, नीति, भारू-प्रेम, पितृ-भक्ति, गुरु-आज्ञा पालन आदि के लिये प्रेरणा स्रोत हैं। ऐसे कार्यक्रमों का समाज में गौरव होना चाहिये किन्तु अनैतिकता का विरोध भी होना चाहिए।

### (5) कर्ण इन्द्रिय निरोध

कान, कर्ण-रसायन, सुललित, राग-रागिनी पूर्ण संगीत, स्वर, शब्द आदि चाहता है। कान के वशवर्ती होकर स्वच्छन्द कोमल धास को इच्छापूर्वक चरने वाला हरिण जो कि वायु के वेग से गति करता है वह भी शिकारी के स्वर, ध्वनि से कीलित होकर प्रिय प्राणों को गवाँ देते हैं। अब कर्ण इन्द्रिय को पुष्ट करने के लिये रेडियो, टी.वी., सिनेमा में अश्लील, अनैतिक गाना विशेषकर आता है। अश्लील गाने का इतना प्रभाव है कि मनुष्य इतना प्रभावित है कि छोटे-छोटे बच्चे

भी उन अश्लील गानों को खाते-पीते, चलते-फिरते हुए गुन-गुनाते हैं, किन्तु धार्मिक, राष्ट्रीय गाना बुलवाने पर भी नहीं बोल पाते हैं। जैनियों के बच्चों को जैनियों का महामंत्र-णमोकार मंत्र भी नहीं आता है परन्तु सिनेमा का गाना, ऐक्सन, चाल-चलन जीवन के प्रत्येक समय में उभरते रहते हैं। इन्द्रियों के दासों की दुर्दशा का चित्रण एक कवि ने निम्न प्रकार किया है-

**करि मृग मीन अलि सरभा, जो एक-एक पर भरते हैं।**

**उनकी क्या दशा होगी, जो पांचों ही को मरते हैं॥**

हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के कारण, हरिण कर्ण इन्द्रिय के कारण, मछली रसना इन्द्रिय (जीभ) के कारण, भ्रमर नाक के कारण, पतंगा आँख के कारण नाश को प्राप्त होता है। परन्तु खेद एवं विचार की बात है कि वे तो पशु हैं, अविवेकी हैं, वे एक-एक इन्द्रिय के वशवर्ती होकर प्रिय प्राण गँवा देते हैं किन्तु विवेकी-विचारशील, विश्व का अति उन्नतशील प्राणी मनुष्य, पांचों इन्द्रिय का दास होकर जो उनके पीछे भागता रहता है उसकी क्या दशा होगी ? थोड़ा स्वयं विचार करिये।

उपरोक्त दोष और गुण का विचार कर आत्म-हितैषी जितेन्द्रिय स्वतन्त्र प्रेम के रसिक साधु-महात्मा पांचों इन्द्रियों को कश्यप (कछुआ) के समान निरोध करके उपर्युक्त कार्य में उनको लगाते हैं जिससे कि उनके प्रगति पथ में किसी प्रकार अवरोध नहीं आवे।

### सात विशेष गुण—

(1) नन्त्रव- (अचेलक) गुण—

**वस्थाजिण वक्केण य अद्वा पत्तादिणा असंवरण।**

**णिभूसण णिग्नं अच्चेलक्कं जगदि पुज्जं॥**

(मूलाचार)

वस्त्र, चर्म, वल्कलों से अथवा पत्ते आदिकों से शरीर को नहीं ढकना, भूषण अलंकार से और परिग्रह से रहित निर्गन्थ वेष जगत् में पूज्य अचेलक्त्व नाम का मूलगुण है।

अचेलक का अर्थ निर्गन्थता या दिग्म्बर=दिक्+अम्बर। दिक् अर्थात् दिशा, अम्बर का अर्थ वस्त्र।

दिक् एव अम्बर यस्य सः दिग्म्बरः। जिसका वस्त्र दिक् अर्थात् आकाश हो

वह दिग्म्बर। यहाँ दिग्म्बर उपलक्षण मात्र है। केवल वस्त्र रहित होने से कोई दिग्म्बर नहीं होता है। जैसे गाय, बैल, पक्षी, नारकी, पागल आदि। दिक् के समान अन्तरंग, बहिरंग स्वच्छ, निर्मल व्यापक निःसंग रूप को दिग्म्बर कहते हैं। उनका दूसरा नाम निर्गन्थता है। निर्गन्थता का अर्थ क्रोध-मान-माया-लोभ-अविद्या, कुसंस्कार, काम आदि अन्तरंग ग्रंथि, धन-धान्य स्त्री-पुत्र, सम्पत्ति, विभूति आदि बहिरंग ग्रंथियों से जो विमुक्त हैं उसको निर्गन्थ कहते हैं।

**अशक्य धारणं चेदं जन्तुनां कातरात्मनाम्।**

**जैनं निस्संगता मुख्यं रूप धीरे निषेव्यते॥**

(आदि पुराण)

जिनेन्द्र भगवान के अलौकिक, अतिश्रेष्ठ, सहज-सरल, प्राकृतिक, बालकवत् निर्गन्थता रूप प्राकृतिक एवं सार्वभौमिक स्वरूप होने से इसका महत्त्व प्रत्येक युग में प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप पाया जाता है।

स्वयं महात्मा बुद्ध कहते हैं कि मैं पहले नग्न निर्गन्थ रहा, अनिश्चित विहार किया, हाथ में आहार किया है। अनेक दुरह (कष्ट) तपश्चरण किया है, इससे सिद्ध होता है कि स्वयं बुद्ध निर्गन्थ थे परंतु यह दिग्म्बर मार्ग (त्रिमण मार्ग) कठिन होने से इस मार्ग को छोड़कर उन्होंने माध्यम मार्ग को अपनाया।

(त्रिपिटक से उद्धृत)

विशाख-वश्र धम्म पदथ कथा में लिखा है कि एक श्रेष्ठी के भवन में 500 दिग्म्बर जैन साधुओं ने आहार ग्रहण किया था। 'महावग्ग' से विदित होता है कि वैशाली में दिग्म्बर जैन साधुओं का विहार होता था। महापरिनिर्वाण सूत्र में भी दिग्म्बर साधु का उल्लेख पाया जाता है। विनय पिटक में भी दिग्म्बर साधु के विहार का उल्लेख है।

वैदिक साहित्य में प्राचीनतम ऋग्वेद में नग्न साधु को "वातवसना" शब्द द्वारा बताया है।

**"मुनयो वातवसनाः पिशंगा बसते माता"**

ऋग्वेदमंडल 10-2-1362

युजुर्वेद में महावीर भगवान को नग्न बताते हुए उनकी उपासना को संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय रूप रात्रि भय तथा धन, मद, शरीर मद आदि निवारक कहा है।

“आतिथ्य रूपं मासर महावीरस्य नग्नहुः।  
रूपमुपासदामेत त्रिस्त्रो रात्रीः सुराः सुतः॥”

यजुर्वेद अथात् 19 मंत्र 14

एकाकी निःहृष्ट शान्तं पाणि पात्रो दिग्म्बरः।  
कदा शम्भो! भविष्यामि कर्मनिर्मूलन क्षयः॥

भृहरि शतक

हे शम्भो ! मैं कब अकेला, कामना रहित, शांत, करपात्री (हाथ में भोजन करना) दिग्म्बर और बन्धन निर्मलन करने वाला कब होऊँगा।

त्रिमण वातवसन (निर्ग्रन्थ) आत्म विद्या में विशारद होते हैं।  
मुण्डी नग्नो मयूराणां पिच्छीधारी महाव्रतः। मुण्डीत, नग्न, मयूर पीछीधारी महाव्रत धारी मुनि होते हैं।

“नगण्ठेसु पिमे करे वियापटा होहंति”

अशोक स्तंभ

(दिल्ली फिरोज शाह कोटला शिला लेख)

कटि सूत्रं च कौपीनं दंडवस्त्रं कर्मण्डलम्।  
सर्वमप्सु विसञ्ज्याय जात रूप धरश्चरेत्॥

(नारद परिव्राजक उपनिषद्)

कटि सूत्र, कौपीन (लंगोट) दण्ड, वस्त्र, कर्मण्डल को जल में विसर्जन करके जात रूप अर्थात् नग्न रूप को धारण करके विचरण करना चाहिए।

हमारे इस्लाम धर्म वाले बन्धुओं! देखिये शायर जलालुद्दीन ने दिग्म्बर नग्न पद को दिव्य ज्योतिसे अलंकृत बताते हुए कहा कि वस्त्रधारी व्यक्ति की दृष्टि तो धोबी की ओर रहती है—

“मस्त बोला मुहत्सिब से काम जा होगा क्या नंगे से तु ओहदा बरा है। नजर धोबी पै जमापोस की है तजल्ली जेवेर उरितातंनी।”

नग्न दरवेश तार्किक से कहता है— अरे भाई तू जा और अपना काम कर, तू दिग्म्बर-न्सा नहीं बन सकता वस्त्र पहनने वाले की दृष्टि सदा धोबी की ओर रहती है। दिग्म्बर की शोभा देवी प्रकाश रूप है। या तो तुम नग्न दरवेशी से कोई संबंध नहीं रखो अथवा उनके सदृश्य दिग्म्बर और स्वाधीन बन जाओ। यदि तुम

पूर्णतया दिग्म्बर नहीं बन सकते तो अपने वस्त्रों को थोड़े परिमाण में रखो।

आज से 300 वर्ष पूर्व शाहजहां बादशाह के राज्य में मुसलिम सूफी फकीर मुहम्मद अली नग्न रूप में विहार करता था। उसका मजार दिल्ली के जामा मस्जिद के बाँये भाग में है। उसका कहना था कि परमात्मा जिस पर दोष देखता है उसे वस्त्र पहना देता है। किन्तु जो निर्दोष है उसे नग्न ही रहने देता है।

पोशाद लिबास हरकरा एबेदीक।

बे एबा रा लिबासे उरियानी दाद॥

अब्दुल कासिम जिलानी नामक मुस्लिम साधु नग्न दिग्म्बर रहा करते थे।

The higher Saints of Islam Called Abduls went about perfectly naked.

(“Mysticism and Magic in Turkey” by Miss huecy M.gonet.)

अब देखिये ईसाई धर्म वालों के यहाँ नग्न साधु का महत्व—

बाइबिल में लिखा है— ‘आदम तथा उसकी पत्नी (ईव) नग्न उत्पन्न हुए थे तथा उद्यान में नग्न रहते थे उसके मन में लज्जा ने स्थान नहीं बनाया था। जब उन्होंने निषिद्ध के वृक्ष के फल को खाया तो उन्हें यह ज्ञान होने लगा कि वे नग्न हैं—

And they (Adam and Eve) were both naked the man and his wife were not ashamed. (Gensis 11-25)

When they ate the fruit of the forbidden tree, they felt and knew that they were naked. (Ibid 11-7-11)

बाइबिल में यह भी लिखा है कि ‘उसने अपने वस्त्र भी अलग कर दिए और सेमुअल के समक्ष इस प्रकार की घोषणा की तथा दिन रात दिग्म्बर रहा उस पर उन लोगों ने पूछा, क्या साल भी पैगम्बरों से हैं ?’

And he stripped his clothes also and prophesised before Samualin Samuel in the like manner and they lay down naked all day and night. Wherefore they said “Is saul also among the prophets. Samual XIX 24

उसी समय प्रभु ने अमोज के पुत्र ईसाईयों से कहा— जा तू भी अपने कपड़ों को दूर कर दें और जूतों को उतार डाल। उसने ऐसा ही किया। वह नग्न हो नंगे पैर फिरने लगा।

At the same time the lord spoke the Isaiah the son of Amoj saying go and loose the sack clothes from off they loins and they put off their shoes from the foot and he did so walking naked and bare footed.

Isaiag XX-2

ईसाई साधु पीटर ने लिखा है। ‘हमें अपने पास कुछ भी नहीं रखना चाहिए। परिग्रह हम सबके लिये पापरूप है। इसका जैसे भी हो त्याग करना है। उसे पापों से बचना है।

“To all of us possession are sins....

The deprivations of these in whatever way it may take place is the removal of sin.” - Clemertine Homilies

शंकराचार्य ने ‘विवेक घृडामणि में लिखा है कि जिस योगी के पास दिशारूपी वस्त्र होते हैं अर्थात् दिगम्बर होते हैं, जिन्हें वस्त्रों को धोने की ज़रूरत नहीं रहती सुखाने की आवश्यकता नहीं रहती। उसको श्रेष्ठ अवस्था में यह जीव पूर्ण निराकुल हो ब्रह्मदर्शन जनित आनन्द प्राप्त करने में समर्थ होता है।

श्री रामकृष्ण कथामृत में लिखा कि रामकृष्ण ने परमहंस अवस्था धारण की थी।

जागने पर भक्तों ने देखा कि प्रभात हो चुका है। रामकृष्ण बालक के समान दिगम्बर नग्न हैं, जिसके शरीर पर एक धागा मात्र भी नहीं। उक्त स्वामीजी ने अपने अश्वनी कुमार दत्त से कहा था कि मैं सभी भौतिक वस्तुओं को भूल जाता हूँ उस समय वस्त्र भी छूट जाता है।

आरोह स्वरथे पार्थ, गाण्डीवं स्वकरे कुरु।

निर्जिता मेदिनी मन्ये निर्गन्थो यस्य सम्मुखे॥

(महाभारत)

जब अर्जुन युद्ध के लिये तैयार हो रहे थे उस समय एक नग्न दिगम्बर मुनिराज आ रहे थे। कृष्ण ने मुनिराज को देखकर कहा— अरे अर्जुन ! अब क्या देखता है शीघ्र रथ पर सवार हो गाण्डीव को हाथ में लो। देख, यह अपने समक्ष निर्गन्थ मुनिराज हैं। अभी युद्ध करने से मैं मानता हूँ पृथ्वी की विजय तुम्हारे हाथ में है।

पद्मनि राजहंसस्य निर्गन्था च तपोधना।

यस्मिन् क्षेत्रे विचरन्ति सुभिक्ष तत्र निश्चयः॥

सुलक्षणी पद्मनि स्त्री, राजहंस, निर्गन्थ-तपोधन जिस क्षेत्र में विचरण करते

हैं वहां निश्चय से सुख-शांति, सुभिक्ष होते हैं।

इससे सिद्ध होता है निर्गन्थ रूप शुभ सूचक है एवं मंगलमय भी है।

“नग्नत्वं सहजं लोके विकारो वस्त्र वेष्टितम्”

(यशस्तिलक चम्पु)

नग्नत्व विश्व में सहज रूप है शरीर पर वस्त्र पहनना अपने विकार को ढांकना है। जब मनुष्य उत्पन्न होता है तब नग्न ही रहता है। बाल्यावस्था में भी नग्न रहता है। बालक की नग्नता को देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं। बालक कभी स्वयं की नग्नता के कारण किसी प्रकार लज्जा का अनुभव नहीं करता। कपड़ा पहनने की इच्छा नहीं रहती है यहाँ तक कि कपड़ा पहनाने से बच्चे रोते भी हैं और कपड़ा फाड़कर फेंक भी देते हैं। वह निर्विकार रूपसे धूमता-फिरता है। उसको सब कोई लाड-प्यार से खिलाते-पिलाते हैं, परन्तु माता-पिता लोग गर्भी, सर्दी, डॉस-मच्छर आदि से बालक की रक्षा करने के लिये बालक को कपड़ा पहनाते हैं। अब वह बड़ा होता है तब वह संसार-प्रपञ्च में, मोह-माया में फँसता है, तब वह अपने विकार भाव को छिपाने के लिये कपड़ा आवश्यक मानता है।

इससे सिद्ध होता है कि कपड़े का मूल उद्देश्य काम विकार को ढँकना, शरीर की रक्षा करना है। परन्तु निर्गन्थ मुनि बालकवत् सरल विकार भाव से रहित होने से कपड़े की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। शरीर को समस्त अनर्थ का मूलकारण एवं परद्रव्य मानकर शरीर का ममत्व भाव भी त्याग देते हैं। इसलिये शरीर-रक्षा के लिये भी वस्त्र धारण नहीं करते हैं। राग-मोह काम-भाव एवं भौतिक सुंदर उपासना से दूर होने के कारण श्रृंगार के लिये भी वस्त्र धारण नहीं करते हैं। वे सोचते हैं हम नंगे आये और नंगे ही जायेंगे फिर बीच में वस्त्र धारण कर के दंगा करने की क्या आवश्यकता है।

वे अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह त्याग करने के कारण वस्त्र का भी त्याग कर देते हैं इसका विस्तृत वर्णन ‘धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका पुष्प II’ के अपरिग्रह महाब्रत के वर्णन में आया है। वहां से देखिये।

कपड़े के लिये पैसा (अर्थ) चाहिये। पैसा तो साधु अपने पास नहीं रखते हैं। पैसा के लिये याचना करनी पड़ेगी परन्तु याचना करना स्वाभिमानी मुनि के लिये मरण से दुःखदायी लगता है। कहा भी है कि—

मांगन मरन समान है, मत मांगे कोई भीख।

मांगन से मरना भला, यह सद् गुरु की सीख॥

घोर वीर तप करत तपोधन, भये क्षीण सूखी गल बांही।  
अत्थि चांम अवशेष रहो, तन नसा जाल झलके तिस मांही।  
औषधि असन पान इत्यादिक प्राण जाउ पर याचत नांही।  
दुर्द्वेर अयाचिक ब्रत धारें, करे न मलिन धरम पर छाही।

(बाईस परि.)

जब मुनि प्राण धातक रोग, तृष्ण होने पर भी याचना नहीं करते हैं, तब सामान्य कपड़े के लिये जो कि प्राण धारण के लिये नितान्त आवश्यक नहीं है फिर उसके लिए याचना नहीं कर सकते हैं।

इसी प्रकार जो सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की आदर्श मूर्ति हैं उन सबको आदर-पूज्यता की दृष्टि से देखना चाहिये। उनको देखकर धृणा नहीं करना चाहिए।

अथमा धनमिच्छन्ति, धनं मानं च मध्यमा।

महान्तो मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥

चाह गयो चिन्ता मिटी, मनुआ बे परवाह।

जिन्हें कुछ नहीं चाह है बे नर शहनशाह॥

### (2) स्थिति भोजन-

समपाद से खड़ा होकर अंजुलि पुट में भोजन लेना स्थिति भोजन है। इसका उद्देश्य यह है कि जब तक जंघा पर खड़े होने के योग्य शक्ति रहेगी, तब तक धर्म साधन उत्तम रीति से हो सकता है। उसके बाद धर्म साधन होना कठिन हो जाता है एवं परावलंबी होना पड़ता है, इसलिए स्वावलम्बन के लिए एवं दूसरों से अपना काम कम लेने के लिए जंघा शक्ति या शारीरिक शक्ति क्षीण होते-होते मुनि लोग आगमानकूल क्रमः विधिवत् आहार आदि को त्याग करते-करते समाधि लेने का कार्य करते हैं।

### (3) एक भुक्त भोजन-

दिन में सूर्य उदय के दो घड़ी पश्चात् एवं सूर्य अस्त के दो घड़ी पहले एवं मध्याह्न के सामयिक का समय छोड़कर केवल एक बार शुद्ध शाकाहार भोजन सद्गृहस्थ द्वारा स्वेच्छापूर्वक भक्ति पूर्वक देने पर लेना, एक भुक्त आहार (भोजन) है। इससे आरोग्य ठीक रहता है। ध्यान-अध्ययन सुचारु रूप से चलता है, एवं

इन्द्रियाँ उत्तेजित नहीं होती हैं। ब्रह्मचर्य ब्रत में दोष नहीं लगता है। एक दिन में अधिक बार भोजन करने पर रोग होता है, आलस्य, प्रमाद उत्पन्न होता है एवं इन्द्रियाँ उत्तेजित होती हैं तथा ब्रह्मचर्य निर्मल नहीं रहता है। कहा भी है कि—  
“कम खाना गम खाना, न हकीम पर जाना न हाकीम पर जाना।”  
लोकोक्ति भी है कि—

एक बार खावे सो योगी, दो बार खावे सो भोगी।

तीन बार खावे सो रोगी, चार बार खावे सो शमशान के भागी।

अभी प्राकृतिक चिकित्सा में भी एक बार भोजन को आरोग्य की दृष्टि से महत्व दिया गया है।

### (4) अदंत धोवन-

श्रृंगारता को कम करने के लिए निर्ममत्व भाव के लिये एवं मुख में स्थित सूक्ष्म जीवों की रक्षा के लिए मुनि लोग दंत मंजन नहीं करते हैं। किन्तु गरम पानी से मुख शुद्धि करते हैं।

### (5) केशलोंच-

अदन्ये वैराग्यश्चापि कृते ये केशलोचनं।

यतीश्वराणं वीरत्वं, ब्रतभूषणं दीपकः॥

केशलोंच से अदीनता, वैराग्यता, वीरत्व एवं ब्रत में निर्मलपना प्रकट होता है।

केश बढ़ने से केशों में जूँ-लीख आदि जीव उत्पन्न हो जाते हैं। शिर मर्दन से, धोने से उनका धात होना संभव रहता है, इसलिए साधु लोग दो-तीन या अधिक से अधिक चार महीने के भीतर निश्चित रूप से केशलोंच करते हैं। जिस दिन केशलोंच करते हैं, उस दिन उपवास करते हैं एवं दोषों का परिमार्जन (प्रतिक्रमण) करते हैं। केशलोंच के अभाव में केशों को काटना पड़ेगा। काटने के लिए कैंची, उस्तरा आदि चाहिए या उसके बनाने वाले क्षोरकार (नाई) चाहिये और इसके लिए रूपया चाहिये। रूपये के लिए याचना करनी पड़ेगी। इससे दीनता होगी। इस प्रकार दीनता न हो, उसके लिए मुनि लोग केशलोंच करते हैं। केशलोंच से आत्म शक्ति, धैर्य, निर्ममत्व, वीतरागता, वीरत्व आदि प्रकट होते हैं। केशलोंच से मुनियों के धर्म के प्रति कितनी आस्था, प्रेम एवं समर्पण भाव है प्रगट होता है।

केशलोंच को करते हुये मानो मुनि लोग क्लेषों को उखाड़ कर फेकते हैं। इससे

उनका वीतराग भाव प्रत्यक्ष रूप से प्रगट होता है। जो केशलोंच देखते हैं उनके हृदय में धर्म की प्रति आस्था प्रकट होती है। यदि केशलोंच नहीं करेंगे तो केश बढ़ेंगे, केशों को स्वच्छ रखने के लिये साबुन, पानी आदि की भी आवश्यकता होगी। उससे आरंभ और हिंसा का भी दोष लगेगा। उपरोक्त समस्त दोष—गुण का विचार करके स्वेच्छापूर्वक स्वयं के हाथ से या साधर्मी के हाथ से केशलोंच करते हैं।

### (6) अस्नान —

स्नान के लिए पानी चाहिए, स्नान करने के बाद पानी बहता है, जिससे सूक्ष्म जीवों की विवारधना होने की संभावना विशेष रहती है। यदि जलाशय में डूब कर स्नान करेंगे तो जीवों का घात होगा। स्नान से सुकुमारता, सुन्दर, प्रियता, आदि भाव प्रगट होते हैं। इसलिए मुनि लोग दोनों संयमों का पालन करने के लिए स्नान नहीं करते हैं।

**अण्हाणं घोर गुणं संजम दुगं पालयं मुणिणो**

(मूलाचार)

मुनि के प्राणी संयम और इन्द्रिय संयम पालन करने रूप घारे गुण स्वरूप अस्नान व्रत होता है।

उपनिषद् में भी कहा है कि—

स्नानं त्रिष्वरणं प्रोक्तं वहुदक वनस्थयोः।  
हं से तु सकृदेव स्यात्परहँसे न विद्यते।  
हंसस्यैकबारम् परम हंसस्य मानस स्नानम्।  
तुर्यातीतस्य भस्म स्नानं अवधूतस्य वायव्य स्नानं॥

(उपनिषद्)

बहुदक (वन में रहने वाले यति) तीन बार जल से स्नान करते हैं, हंस एक बार जल से स्नान करते हैं, परम हंस मानसिक स्नान करते हैं। तुर्यातीन भस्म से स्नान करते हैं, अवधूत वायु से स्नान करते हैं।

**परमहं साश्रयस्योहि स्नानदेर विधानतः।**

**अशेष चित्तं वृत्तीनां, त्यां केवलमाचरेत्॥**

(नारद परिव्राजक)

परमहंस आश्रम के पहले—पहले तक स्नान का विधान है परन्तु परमहंस स्थानापन्न महात्मा केवल सम्पूर्ण विकारत्त्मक चित्त वृत्तियों का त्याग करते हैं। उनके लिए स्नान का विधान नहीं है।

स्नान अनेक प्रकार का होता है, जल स्नान, सूर्य किरण स्नान, वायु स्नान, भस्म स्नान, तेल स्नान, (अध्यंगस्नान) मानसिक स्नान, मंत्र स्नान, व्रत स्नान आदि। जो गृहस्थ में रहकर गृहस्थ संबंधी व्यापार धंधा, विषय भोग आदि करते हैं उनके शरीर शुद्धि के लिये जल स्नान की आवश्यकता होती है। जो उपरोक्त काम को छोड़कर ब्रह्मचर्य में रहकर आत्म साधन करते हैं। उनके लिए मानसिक स्नान, मंत्र स्नान, व्रत स्नान, पर्याप्त है। कहा है—

ब्रह्मचारी सदा सुखी, ब्रह्मचारी सदा पवित्र रहते हैं।

### (7) भूमि शयन —

**फासुय भूमि परसे अप्पम संथारिदम्हि पच्छण्ण।**

**दंडं धाणुव्य सेज्जं खिदि सयणं एय पासेण।**

(मूलाचार)

अल्प संस्तर में या संस्तर रहित एकांत सूक्ष्मादि जीव जन्तु से रहित प्रासुक भूमि में दण्डाकार या धनुषाकार शयन करना अथवा एक पाश्व से सोना भूमि शयन व्रत है। शयन के लिये घास, (सूखी घास) धान्य का पुआल, चटाई, लकड़ी का फलक, शिला (पत्थर) आदि का उपयोग साधु लोग करते हैं। यह भी भूमि शयन व्रत के अन्तर्भूत है।

पलंग, गद्दा आदि में सोने से विलासिता, कामुकता आदि की वृद्धि होती है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार और प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार भी भूमि प्रदेश में नंगे पाव से चलना एवं नग्न शरीर होकर स्वच्छ भूमि पर शयन करना आरोग्य के लिये हितावह है। अभी तो विदेश में तथा कहीं—कहीं भारत में भी स्वास्थ्य संपादन के लिये भूमि में शयन करते हैं। भूमि में शयन करने से स्नायु, शरीर दृढ़ होते हैं एवं रक्त संचार सुचारू रूप से होता है।

## अभ्यास प्रश्न (परि. 4)

1. जीव कब साधु चारित्र को स्वीकार करता है?
2. अंतरंग परिग्रह कितने हैं?
3. बहिरंग परिग्रह कितने हैं?
4. 28 मूलगुणों के नाम लिखो।
5. समिति किसे कहते हैं?
6. पंच समितियों का सविस्तार वर्णन करो।
7. पंचेन्द्रिय निरोध का सविस्तार वर्णन करो।
8. इन्द्रियों के अधीनस्थ जीवों की क्या दुर्दशा होती है?
9. नग्नत्व किसे कहते हैं?
10. विविध मत में वर्णित नग्नत्व का वर्णन करो।
11. दिगम्बर जैन साधु नग्न क्यों रहते हैं?
12. स्थिति भोजन किसे कहते हैं?
13. एक भुक्त भोजन का वर्णन करो।
14. जैन साधु केशलोंच क्यों करते हैं?
15. जैन साधु स्नान क्यों नहीं करते हैं?
16. भूमिशयन का स्वरूप लिखो।

जो वंशानुगतरूप से ही धार्मिक न होकर जो स्वयं (स्व-आत्मा) को पवित्र बनाने के लिए धर्म पालन करता हो क्योंकि वंशानुगत से तो शरीर मिलता है परन्तु आत्मा वंशानुगत नहीं होता है तथा आत्मा की पवित्रता ही धर्म है।

जो सत्यग्राही, सरल, पवित्र, उदारमना, न्यायपरायण, निष्पक्ष, धैर्यवान्, शान्त, गंभीर, साहसी, निर्भय हो वही यथार्थ धार्मिक हैं।

— आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

## परिच्छेद - 5

# अनेकान्त एवं स्याद्वाद धर्म

### अनेकान्त-

स्वभाव से ही प्रत्येक द्रव्य अनेक धर्म से युक्त होता है, इसलिये प्रत्येक द्रव्य स्वभावतः ही अनेकान्तमय है। जैसे रामचन्द्र एक मर्यादा पुरुषोत्तम थे। वे लव-कुश की अपेक्षा पिता, दशरथ की अपेक्षा पुत्र, लक्ष्मण की अपेक्षा बड़े भाई, सीता की अपेक्षा पति, जनक की अपेक्षा दामाद (जमाई), सुग्रीव की अपेक्षा मित्र, रावण की अपेक्षा शत्रु, हनुमान की अपेक्षा प्रभु आदि अनेक धर्म से युक्त थे। राम एक होते हुये भी दशरथ की अपेक्षा पुत्र होते हुये भी लव-कुश की अपेक्षा पिता रूप विरोधी गुण से युक्त थे। तो भी अपेक्षा की दृष्टि से कोई प्रकार का विरोध नहीं है। इसी प्रकार अन्यान्य गुण अपने अपने स्थान पर अविरुद्ध एवं उपयुक्त हैं।

100 संख्या 10 संख्या की अपेक्षा अधिक होते हुए भी 1000 संख्या की अपेक्षा कम है। जैसे सेवफल नारियल से छोटा होते हुये भी आँवले की अपेक्षा बड़ा है। आँवला सेव फल से छोटा होने पर भी इलायची की अपेक्षा बड़ा है। धी निरोगी के लिये शक्ति दायक होते हुए भी ज्वर रोगी के लिये हानि कारक है। अग्नि चिमनी में रहते हुए उपकारक है परन्तु पैट्रोल-टंकी में डालने पर अपकारक है। अग्नि एक होते हुए बी पाचकत्व, दाहकत्व, प्रकाशकत्व, आदि गुणों के कारण अनेक भी है। एक आत्मा स्वभावतः एक होते हुए भी अस्तित्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य गुण के कारण अनेक है। इस प्रकार विश्व के प्रत्येक द्रव्य अनेक विरोधी गुणों से एवं अविरोधी गुणों से युगपत् (एक साथ) युक्त होने के कारण अनेकान्तमय हैं।

### स्याद्वाद-

वक्ता एक समय में एक ही धर्म को कह सकता है, अन्य अनेक धर्म अनेक धर्म होते हुए भी वह नहीं कह सकता है। प्रतिपादित धर्म को छोड़ कर अन्य धर्म को स्वीकार करने के लिए अथवा सूचना के लिये स्यात् या कथंचित् शब्द प्रवक्ता प्रयोग करता है। अनेकान्त प्रकरण में बताया गया है कि प्रत्येक द्रव्य में एक साथ

अनन्त धर्म विद्यमान रहते हैं। शब्द में सीमित शक्ति होने के कारण वक्ता एक समय में एक गुण का वर्णन कर पाता है अन्य धर्म का नहीं तो भी अन्य धर्म लोप नहीं होते हैं, किन्तु अविवक्षित हो जाते हैं। जैसे एक वक्ता बोलता है कि रामचन्द्र दशरथ के पुत्र थे। इस वाक्य में पुत्रत्व धर्म को छोड़कर पितादि अन्य धर्म का वर्णन नहीं किया, तो भी पितादि गुण लोप नहीं हो गये। इस पितादि गुण को सुरक्षित करने के लिये, उनकी सत्ता को स्वीकार करने के लिये स्यात् शब्द का प्रयोग करता है। स्यात् का अर्थ है, अपेक्षा से, कथंचित्, एक दृष्टि से, यदि वक्ता हठग्राह पूर्वक बोलेगा कि रामचन्द्र केवल पुत्र ही है तो अन्य पितादि धर्म लोप करने के कारण उसका अभिप्राय एवं वचन मिथ्या हो जायेगा।

### स्याद्वाद के सप्त भंग (प्रकार) हैं—

1. स्यात् अस्ति— एक अपेक्षा से द्रव्य है। जैसे रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है।

2. स्यात् नास्ति— अन्य अपेक्षा से द्रव्य नहीं। जैसे रामचन्द्र लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है।

3. स्यात् अव्यक्तव्य— एक साथ दो गुणों का वर्णन एक शब्द में नहीं हो सकता है अतः अव्यक्तव्य है। जैसे रामचन्द्र, दशरथ एवं लवकुश की अपेक्षा एक साथ क्या हो सकता है? पुत्र अथवा पिता। इस पिता पुत्र रूपी गुण को हम दशरथ एवं लवकुश की अपेक्षा एक शब्द में वर्णन नहीं कर सकते हैं। इसलिये अव्यक्तव्य अर्थात् वचन के अविषय है।

4. स्यात् अस्ति नास्ति— स्वगुण की अपेक्षा एवं पर गुण की अपेक्षा जो क्रम से वर्णन किया जाता है उस भंग को अस्ति नास्ति भंग कहा जाता है। जैसे रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है, लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है।

5. स्यात् अस्ति अव्यक्तव्य— क्रमशः स्वगुण की अपेक्षा द्रव्य है, और युगपत् स्व पर की अपेक्षा वस्तु अव्यक्तव्य है। जैसे रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है और दशरथ तथा लवकुश की अपेक्षा युगपत् अव्यक्तव्य है।

6. स्यात् नास्ति अव्यक्तव्य— क्रमशः पर गुण की अपेक्षा द्रव्य नहीं है और युगपत् स्वपर गुण की अपेक्षा अव्यक्तव्य है। जैसे रामचन्द्र लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है और दशरथ तथा लवकुश की अपेक्षा युगपत् अव्यक्तव्य है।

7. स्यात् अस्ति नास्ति अव्यक्तव्य— क्रमशः स्वधर्म की अपेक्षा वस्तु है, पर

धर्म की अपेक्षा वस्तु नहीं है, युगपत् स्वपर धर्म की अपेक्षा अव्यक्तव्य है। जैसे रामचन्द्र दशरथ की अपेक्षा पुत्र है, लवकुश की अपेक्षा पुत्र नहीं है, दशरथ और लवकुश की अपेक्षा युगपत् कहने की अपेक्षा अव्यक्तव्य है।

अनेकान्त भावात्मक अहिंसा है, स्याद्वाद वाचनिक अहिंसा है। अनेकान्त एवं स्याद्वाद, समन्वय के लिये, विश्व शांति के लिये अमृततुल्य है।

द्रव्य में स्थित समस्त गुण, धर्म, पर्यायों की सत्ता को स्वीकार करने से द्रव्यों के पूर्ण गुणादि की रक्षा होती है तथा मन में यथार्थ भाव होने के कारण भाव अहिंसा होती है। अहिंसा का अर्थ दूसरों की सत्ता को स्वीकार करना भी है। स्याद्वाद से अन्य अविवक्षित धर्मों को वचन के माध्यम से घात नहीं पहुँचाने के कारण वाचनिक अहिंसा हुई। विश्व में जो अशान्ति, विष्वाव, युद्ध होता है, उसका मूल कारण दूसरों की सत्ता को ठुकराना, अधिकार को स्वीकार नहीं करना, उनके सत्यांश को मान्यता नहीं देना है परन्तु अनेकान्त एवं स्याद्वाद उपरोक्त दोषों को दूर करते हैं, जिससे विश्व में समन्वय एवं शांति की स्थापना हो सकती है। दोनों सिखाते हैं कि तुम्हारा जो सत्य है उस सत्य को बिना त्याग किये अन्य के सत्यांश को भी स्वीकार करो, सन्मान दो।

Right is mine जो सत्य है वह मेरा है, यह अनेकान्त का अमर संदेश है। परन्तु Mine is right मेरा जो कुछ है वह सब सत्य है मानना अनेकान्त एवं स्याद्वाद की उदारनीति के विरुद्ध है। वे इस संकीर्ण स्वार्थपूर्ण हठग्राहिता को नहीं मानते हैं। अनेकान्त से मनोभाव, हृदय उदार एवं विशाल हो जाता है। स्याद्वाद से वचन हित, मित, प्रिय अमृतोपम हो जाता है। अनेकान्त मानसिक औषधि है एवं स्याद्वाद वाचनिक औषधि है। पहिले अनेकान्त—स्याद्वाद के ऊपर गहन अध्ययन के अभाव से या कुछ संकीर्ण मनोभाव से कुछ लोग विरोध करते थे। परंतु जितना—जितना मनुष्य समाज तार्किक विचारों की ओर बढ़ा, निरपेक्ष दृष्टि से देखने लगा, विज्ञान की नवीन शोध हुई धर्म एवं दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन हुआ तब अनेकान्त, स्याद्वाद का महत्त्व दिन दुगना रात चौगुना बढ़ रहा है। इसका वर्णन अन्य धर्म में यत्र तत्र आंशिक रूप में होते हुये भी विधिवत् रूपसे सूक्ष्म वर्णन नहीं है। वर्तमान भौतिक विज्ञान जगत् में महामना, सात्त्विक, समन्वय एवं अहिंसावाद के पुजारी महावैज्ञानिक आईन्स्टीन ने जो शोध, बोध करके जगत् को चमलकृत कर दिया है। इससे विज्ञान में एक नई क्रांति एवं दिक् परिवर्तन हुआ 71

है। उसका मूल कारण सापेक्ष सिद्धांत है। अभी दार्शनिक हो, वैज्ञानिक हो या राजनैतिक सब ही की दृष्टि अनेकांत की ओर बढ़ रही है, यह विश्व के लिये मंगल सूचक है। पूर्वाचार्यों ने कहा भी है—

**जेण विणा तोगस्स य ववहार सवदा ण निवठई।**

**तेण भुवणैकगुरुणा णमो अनेकांत वायस्स॥**

जिस अनेकांत वाद के बिना लोक-व्यवहार भी नहीं चलता है उस जगत् का एकमेव गुरु अनेकांत वाद को मेरा नमस्कार हो।

### अध्यास प्रश्न (परि. 5)

1. प्रत्येक द्रव्य अनेकान्तमय क्यों है?
2. अनेकान्त को समझाने के लिये कुछ उदाहरण प्रस्तुत करो।
3. स्याद्वाद का स्वरूप क्या है?
4. सप्तभंगी का सविस्तार वर्णन करो।
5. अनेकान्त एवं स्याद्वाद भी अहिंसा क्यों है?
6. अनेकान्त विश्व का एकमेव गुरु क्यों है?

**वैज्ञानिक संगोष्ठी में सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करती हुई बालिकाएँ**



### परिच्छेद-6

## कर्म सिद्धान्त

विश्व में विभिन्न वैचित्र्यपूर्ण जीवन दृष्टिगोचर होते हैं। द्रव्य दृष्टि से अखिल जीव जगत् सूक्ष्मातिसूक्ष्म निगोदिया (वायरस) से लेकर पूर्ण विकसित मनुष्य तक ही नहीं परन्तु अनंत ज्ञान सम्पन्न अरिहन्त सिद्ध भगवान् भी एक समान है। यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि द्रव्य अपेक्षा तथा जातीय अपेक्षा सम्पूर्ण अनंतानन्त जीव एक समान होने पर भी उसमें आकार-प्रकार, शक्ति, बुद्धि, ज्ञान, आचार-विचार में जो विभिन्नता परिलक्षित होती है उसका कारण क्या है? बिना कारण से क्या उनमें यह वैचित्र्यपूर्ण अन्तर हो सकता है? नहीं, कदापि नहीं, बिना विभिन्न प्रकार कारणों से विभिन्न कार्य होना असंभव है। आचार्य कुन्द-कुन्द देव के नियमसार में संसारी जीव में जो विभिन्न प्रकार आचार-विचार परिलक्षित होता है उसका कारण बताते हुए कहते हैं कि—

**“णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणाविहं हवे लब्दी।”**

अनेक प्रकार के जीव हैं एवं अनेक-अनेक प्रकार के कर्म या दैव हैं। इसलिए उनके स्वस्वदैवानुसार उनकी लक्ष्य भिन्न-भिन्न प्रकार होती है।

मनुष्य गति एक होने पर भी प्रत्येक मनुष्य का आकार, प्रकार, बुद्धि, वैभव, स्वास्थ्य अलग-अलग होता है। इतना ही नहीं एक ही परिवार में एक ही माता-पिता से उत्पन्न होने वाली अनेक संतान के शरीर, आरोग्य, आचार-विचार, बुद्धि, वर्ण प्रायः वैषम्य रहते हैं और आश्चर्य की बात यह है कि एक ही व्यक्ति का हाथ व एक अवयव सबल होता है तो अन्य अवयव दुर्बल होता है। बाल्यावस्था में कोई जड़मति भोदू रहता है तो वही युवावस्था में तीक्ष्ण बुद्धिशाली हो जाता है। पुनः वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति से रहित हो जाता है। अन्य कोई व्यक्ति उपरोक्त व्यक्ति से विपरीत भी हो सकता है। एक व्यक्ति बाल्यावस्था में उद्घण्ड, उच्छृंखल होता है तो वही किशोर या युवावस्था में गंभीर धर्मात्मा हो जाता है। वही वृद्धावस्था में विपरीत परिणमन भी कर लेता है। उपरोक्त वैचित्र्यपूर्ण परिणमन का कारण क्या है? ऐसा प्रश्न होना स्वाभाविक है। उसका सटीक व संक्षिप्त उत्तर यह है कि उसका दैव एवं पुरुषार्थ ही मूल कारण है।

गति अपेक्षा तिर्यज्ज्व गति एक ही गति है। उनमें भी फिर एकेन्द्रिय, द्विन्द्रियादि जातीय अपेक्षा पाँच उत्तर भेद हो जाते हैं। एकेन्द्रिय जाति में पुनः साधारण एवं प्रत्येक उपभेद हैं। उनमें फिर अनेक अवान्तर उपभेद भी होते हैं। उदाहरण के तौर पर प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव को ग्रहण कीजिए। उनमें फिर (1) वनस्पतिकायिक, (2) पृथिवीकायिक, (3) जलकायिक, (4) वायु कायिक (5) अग्निकायिक रूप से पाँच प्रभेद हैं। वनस्पतिकायिक के दस लाख (10,00,000) कुलकोटि योनि हैं। योनि की अपेक्षा वनस्पतिकायिक के दस लाख (10,00,000) कोटि पुनः अवान्तर भेद हो जाते हैं। उनमें से पुनः उदाहरण के तौर पर आम तथा आमवृक्ष को लीजिए। उनमें भी अनेक भेद-प्रभेद हैं— लंगड़ा, दशहरी, सीपिया, बीजू, बारहमासी, तोतिया, शुकूल आदि। एक ही पीपल (पीपर) पेड़ के प्रत्येक पत्र का आकार-प्रकार प्रायः एक प्रकार नहीं होता, भिन्न-भिन्न होता है। उपरोक्त वैचित्र्यपूर्ण विभिन्नता का कारण अपना—अपना स्वयोग्यपूर्ण उपार्जित कर्म/दैव है।

यह अनुभव सिद्ध सिद्धान्त है कि कभी—कभी इच्छित अभिलाषित कार्य के विरुद्ध अनिच्छित, अनभिलाषित कार्य हो जाता है। जैसे नीरोग, स्वस्थ रहने के इच्छुक एवं योग्य आहार-विहार करने वालों को भी रोग हठात् आ घेरता है। प्रायः कोई भी जीव दुःखी, निर्धन होने के लिए अभिलाषा नहीं करता है। परन्तु अधिकांश मनुष्य रोगी, दुःखी एवं निर्धन होते हैं। इसका कारण पूर्व उपार्जित प्रबल दैविक शक्ति है। जैनाचार्यों ने कहा भी है—

### अबुद्धि पूर्वपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः।

अबुद्धि पूर्वक सम्पादित कार्य की अपेक्षा से दुष्ट—अनिष्ट कार्य अपने पूर्वोपार्जित दैव से हुए हैं, ऐसा जानना चाहिए।

कुछ विशिष्ट प्रबल शक्ति सम्पन्न दैवयोग से कुछ अनिच्छित कार्य भी होता है। उस समय में प्रबल प्रचण्ड दैवशक्ति के सामने पुरुषार्थ की शक्ति अकिञ्चित्कर हो जाती है।

**कर्मचिरंति सवसा तसुदयाम्मि उ परवसो होन्ति।  
रुक्खं दुरुहड़ सवसो, विग्लस परवसो ततो॥**

(विशेषावश्यक)

कर्म व दैव को सम्पादन करने में जीव स्वतन्त्र है। कर्म के फल भोगने पर जीव स्वतन्त्र नहीं है बल्कि कर्माधीन है। जैसे— वृक्ष आरोहण जीव स्वतन्त्र

स्वेच्छापूर्वक करता है परन्तु दैवात् असावधानी से पेड़ से फिसल कर गिर जाये तो गिरते समय वह परतंत्र हो जाता है अर्थात् उस समय में उसका पुरुषार्थ विशेषकर कार्यकारि नहीं हो पाता है। गीता में भी कर्मयोगी नारायण श्रीकृष्ण इस कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुये धनुर्धर अर्जुन को अग्र प्रकार उद्बोधन करते हैं—

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन॥47॥**

कर्म में ही तुझे अधिकार है उससे उत्पन्न होने वाले अनेक फलों में कदापि नहीं। गोस्वामी तुलसीदास भी हिन्दी साहित्य की अमर कृति रामचरित मानस में कहते हैं कि—

### विश्व प्रधान कर्मकरि राखा।

जो जस करहि सो तस फल चाखा।

पुराण प्रसिद्ध, इतिहास प्रसिद्ध अनेक महापुरुष हुये हैं जिनका जन्म गरीब, अशिक्षित परिवार में हुआ है परन्तु वे अपने अदम्य साहस, निष्ठा एवं पुरुषार्थ के माध्यम से महान् बने हैं। महान् बनने में दैव की अपेक्षा अपने पुरुषार्थ का योगदान अधिक रहा है। जैनाचार्यों ने कहा भी है—

**बुद्धि पूर्वाऽपेक्षायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात्।**

जो कार्य बुद्धि पूर्वक किये जाते हैं उस अपेक्षा से इष्ट और अनिष्ट कार्य अपने पुरुषार्थ से हुये हैं ऐसा जानना चाहिए।

जो कार्य अनुकूल हो या प्रतिकूल हो यदि वह अतर्कितोपस्थित है अर्थात् उस कार्य करने का विचार रहित (अबुद्धिपूर्वक) है तो ऐसी स्थिति में जो कार्य होता है उसको भाग्य कृत कहेंगे। बुद्धिपूर्वक जो भी कार्य है और उसमें जो सफलता मिलती है, उस समय वहाँ पुरुषार्थ प्रधान एवं दैव गौण माना जाता है। इस स्थिति में जो कार्य होता है उसको पुरुषार्थ से हुआ कहेंगे। इस तरह अबुद्धिपूर्वक जीव को जो दुःखादिक होते हैं वे दैव की प्रधानता से होते हैं तथा बुद्धिपूर्वक जो लाभ—अलाभ आदि जीव को होते हैं पुरुषार्थ की प्रधानता से होते हैं। इस प्रकार दोनों की प्रधानता एवं गौणता से कार्य बनता है। अनुकूल दैव और अनुकूल पुरुषार्थ, प्रतिकूल दैव और प्रतिकूल पुरुषार्थ होने पर भी एक मुख्य और एक गौण रहता है।

संसारी जीवों की विभिन्न वैचित्र्यपूर्ण परिस्थिति, भावना, बुद्धि आदि को जानने के लिए कर्म सिद्धान्त को जानना केवल आवश्यक नहीं है परन्तु अपरिहार्य है।

कर्म सिद्धान्त में मनोविज्ञान, जीव-विज्ञान, आनुवांमशिकी, जीन्स, D.N.A., R.N.A. आदि सिद्धान्त केवल गर्भित नहीं है परन्तु इन सिद्धान्तों के कारण तथा इन सिद्धान्तों से भी यह श्रेष्ठ तथा निभ्रान्त है। कर्म सिद्धान्त को विशेष जानने के लिए जिज्ञासु मेरी ‘कर्म का दार्शनिक वैज्ञानिक विश्लेषण’ ‘भाग्य एवं पुरुषार्थ’ ‘निमित्त उपादान मीमांसा’, ‘पुण्य-पाप मीमांसा’ कृतियों का अध्ययन करें।

### विश्व के सप्ततत्त्व नव पदार्थ

आस्रव बंधन संवरण णिज्जर मोक्षो सपुण्यपापा जे।

जीवाजीव विसेसा ते वि समासेण पर्भणामो॥(28)

आस्रवबन्धनसंवरननिर्जरमोक्षाः सपुण्यपापाः ये।

जीवाजीवविशेषाः तान् अपि समासेन प्रभणामः॥

We shall describe briefly those varieties of Jiva and Ajiva also which are (known as) Asrava, Bandha, Samvara, Nirjara and Moksha with Punya and Papa.

अब जो आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य तथा पाप ऐसे सात जीव, अजीव के भेदरूप पदार्थ हैं, इनको भी संक्षेप से कहते हैं।

इस गाथा में जीव द्रव्य तथा पुद्गल द्रव्य (कार्मण वर्गणा) के मिश्रण से (संश्लेष बंध से) तथा उसके वियोग से जो विभिन्न अवस्थायें होती हैं उसका वर्णन किया गया है। इनके मुख्यतः सात अवस्थायें होती हैं जिसे सप्त तत्त्व कहते हैं। वे हैं—

1. जीव 2. अजीव (कर्म वर्गणाएँ) 3. आस्रव 4. बंध 5. संवर 6. निर्जरा 7. मोक्ष। आस्रव के दो भेद हो जाते हैं। यथा (1) पुण्यास्रव (2) पापास्रव। उपर्युक्त सप्त तत्त्व में पुण्य और पाप मिलाने पर 9 पदार्थ हो जाते हैं। ये आस्रवादि जीव एवं अजीव की पर्यायें हैं, अवस्थायें हैं। ये मौलिक द्रव्य नहीं हैं। आस्रवादि जीव रूप भी है और अजीव रूप भी है। इसका वर्णन आगे करेंगे। तथापि एकाध उदाहरण देकर समझाता हूँ। जैसे— आस्रव तत्त्व लीजिये। जीव के जो वैभाविक परिणाम एवं आत्म प्रदेशों का परिसंदर्भ है वह भाव आस्रव (जीवास्रव) है और इस जीवास्रव को निमित्त पाकर जो कर्म पुद्गलों का उस जीवों में आगमन रूप पर्याय-अवस्था है वह (द्रव्य आश्रय / अजीवास्रव) है।

इसी प्रकार बंधादि में जान लेना चाहिये। आगे आस्रवादि की परिभाषा तथापि यहाँ सक्षिप्त रूप से परिभाषा दे रहा हूँ—

1. आस्रव :— जीव के वैभाविक योग एवं उपयोग से कर्मों का जो आगमन होता है उसे आस्रव कहते हैं।

2. बंध :— कर्मास्रव के बाद जीव के वैभाविक कारणों के कारण जीव और कर्म का जो संश्लेष सम्बन्ध होता है उसे बंध कहते हैं।

3. संवर :— आस्रव के विपरीत परिणाम को संवर कहते हैं अर्थात् कर्मों का आना रूक जाना संवर है।

4. निर्जरा :— जीव के शुभ एवं शुद्धभाव से कर्म का एकदेश जीव से पृथक् हो जाना निर्जरा है।

5. मोक्ष :— शुद्ध परिणति के कारण सम्पूर्ण कर्मों का जीव से सम्पूर्ण रूप से पृथक्करण हो जाना मोक्ष है।

6. पुण्य :— जीव के शुभ परिणाम से कर्मों का प्रशस्त रूप परिणमन करना पुण्य है।

7. पाप :— जीव के अशुभ परिणाम से कर्म का अप्रशस्त परिणमन करना पाप है।

8. जीव :— चैतन्य गुण युक्त द्रव्य को जीव कहते हैं।

9. अजीव :— चैतन्य रहित अवशेष पांचों द्रव्य अजीव होते हुये भी इस प्रकरण में कर्म वर्गणा को अजीव रूप में स्वीकार किया गया है।

### भावास्रव एवं द्रव्यास्रव

आस्रवदि जेण कर्मण परिणामेणप्यणो स विष्णेओ।

भावास्रवो जिणुत्तो कर्मास्रवणं परो होदि॥(29)

आस्रवति येन कर्म परिणामेन आत्मनः स विज्ञेयः।

भावास्रवः जिनोक्तः कर्मास्रवणं परः भवति॥

That modification of the soul by which karma gets into (it) is to be known as Bhavarava, as told by the Jina, and the other (kind of Asrava) is the influx of Karma.

जिस परिणाम से आत्मा के कर्म का आस्रव होता है उसको श्री जिनेन्द्र द्वारा

कहा हुआ भावास्त्रव जानना चाहिये, और भावास्त्रव से भिन्न ज्ञानावरण आदिरूप कर्मों का जो आस्त्रव है सो द्रव्यास्त्रव है।

पूर्वोक्त (28) नं. गाथा में जो सप्त तत्व का दिग्दर्शन किया गया था, उनमें से प्रथम आस्त्रव तत्व का वर्णन 29, 30, 31, गाथा में किया गया है। 29 नं. गाथा से भावास्त्रव की परिभाषा दी गई है। आस्त्रव तत्व का वर्णन करते हुये उमास्वामी ने कहा है—

**कायवांड्मनः कर्मयोगः। (1) अ. 6 पृ. 353**

*Yoga is the name of vibrations set in the soul by the activity of body, speech and mind.*

काय, वचन और मन की क्रिया योग है।

इस विश्व में कार्मण वर्गणा ठसाठस भरी हुई हैं। उसमें कर्मरूप परिणमन करने की योग्यता भी है। परन्तु जब तक जीव के योग एवं उपयोग का निमित्त नहीं मिलता है तब तक कर्म वर्गणा आकर्षित होकर जीव में आकर नहीं मिलती है, इसलिए आस्त्रव तत्व का वर्णन करने के पहले ही योग का वर्णन किया गया है क्योंकि योग से आस्त्रव होता है।

काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं। इस क्रिया से आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन हलन-चलन ही योग है। वह निमित्तों के भेद से तीन प्रकार का है— काययोग, वचन योग और मनोयोग

गोम्मट्सार में कहा भी है—

**पुग्गलविवाह इदे होदयेण मणवयणकायजुत्तस्त।**

**जीवस्त जा हु सत्ती, कम्मागमकारणं जोगो॥(216)**

(गो.जी.)

पुद्गल विपाको शरीर नाम कर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की जो कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है उसको योग कहते हैं।

**देहोदयेण सहिओ जीवो आहरदि कम्मणोकम्म।**

**पडिसमयं सब्बंग तत्त्वायसपिंडओव जत्तं॥(3)**

(गो.क.पृ. 2)

यह जीव औदारिक आदि शरीर नाम कर्म के उदय से योग सहित होकर

ज्ञानावरणादि आठ कर्म रूप होने वाली कर्म वर्गणाओं को तथा औदारिक आदि चार शरीर (1) औदारिक (2) वैक्रियक (3) आहारक (4) तैजस रूप होने वाली जो कर्मवर्गणाओं को हर समय चारों तरफ से ग्रहण (अपने साथ सम्बद्ध) करता है। जैसे कि आग से तपा हुआ लोहे का गोला पानी को सब ओर से अपनी तरफ खींचता है।

**सः आस्त्रवः**

*This Yoga is the channel of Asrava or inflow of Karmic matter into the soul.*

वही आस्त्रव है।

काययोग, वचनयोग एवं मनोयोग से आस्त्रव होने के कारण इन योगों को ही आस्त्रव कहा है। कर्म परमाणु का, योग के द्वारा आकर्षित होकर आने को आस्त्रव कहते हैं। योग, आस्त्रव होने में कारण है तथापि सूत्र में कारण में कार्य उपचार कर योग को ही आस्त्रव कहा है। जैसे— अन्न प्राण नहीं हैं तो भी प्राण की स्थिति में अन्न कारण होने से अन्न को ही प्राण कह देते हैं।

जैसे— नौका में छिद्र होने पर छिद्र से पानी नौका में प्रवेश कर लेता है उसी प्रकार मन, वचन, काय के परिस्पन्दन रूपी छिद्र से कर्म का आगमन होता है उसे आस्त्रव कहते हैं। आस्त्रव के दो भेद हैं। (1) द्रव्य आस्त्रव (2) भाव आस्त्रव।

उपर्युक्त वर्णन से द्रव्य संग्रह की प्रतिपत्ति एवं तत्त्वार्थ सूत्र की प्रतिपत्ति में कुछ विरोधाभास प्रतीत होता है। क्योंकि द्रव्य संग्रह के अनुसार आस्त्रव का कारण जीव का परिणाम कहा गया है। तो तत्त्वार्थ सूत्र के अनुसार इसका कारण मन, वचन, काय का परिस्पन्दन कहा है परन्तु दोनों का हार्द या रहस्य एक ही है। उसका कारण यह है कि जब जीव में वैभाविक परिणाम होता है तब उस वैभाविक कारणों के कारण जीव के आत्म प्रदेश में क्षोभ/कम्पन/स्पंदन/योग उत्पन्न होता है और इसके कारण ही आस्त्रव होता है। परिणाम एवं योग में कार्य-कारण संबंध है। परिणाम कारण है तो योग कार्य है। द्रव्य संग्रह ग्रंथ कर्त्ता ने कारण को मुख्यता देकर वर्णन किया है तो तत्त्वार्थ सूत्र के ग्रंथ कर्त्ता ने कार्य को मुख्यता देकर वर्णन किया है। विवक्षा वशतः वर्णन अलग होते हुए भी दोनों के उद्देश्य एवं कार्यादि में किसी प्रकार का अंतर एवं विरोध नहीं है। परिणाम के बिना केवल शरीर में परिस्पन्दन होने पर आस्त्रव नहीं होता है। जैसे— मृत शरीर में किसी कारणवशतः

हलनचलन होने पर भी कर्मस्त्रव नहीं होता है। जैसे ध्यानस्थ मुनिराज का शरीर कोई दुष्ट जीव हिलता है, डुलाता है या फेंकना है तब उस सम्बन्धी शरीर में कम्पन भी होता है तो भी उस कम्पन संबंधी कर्मस्त्रव नहीं होता है इससे सिद्ध होता है कि वैभाविक उपयोग से जो योग होता है उससे आस्त्रव होता है।

### भावास्त्रव की परिभाषा

**मिथ्यत्वाविरतिप्रमादजोगकोहादओऽथ विण्णेया।**

**पण पण पणदस तिय चदु कमसो भेदा दु पुब्वस्स॥(30)**

**मिथ्यात्वाविरति प्रमादयोगक्रोधादयः अथ विज्ञेयाः।**

**पञ्च पञ्च पञ्चदश त्रयः चत्वारः क्रमशः भेदाः तु पूर्वस्य॥**

Then, it should be known that of the former (i.e. Bhavasrava) (the subdivisions are) Mithyatva, Aviratim Pramada, Yoga, Anger, etc; (which are again of) five, five, fifteen, three and four classes, respectively.

अब प्रथम जो भावास्त्रव है उसके मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और क्रोध आदि कषाय ऐसे पांच भेद जानने चाहिये और मिथ्यात्व आदि के क्रम से पांच, पांच, पन्द्रह, तीन और चार भेद समझने चाहिये अर्थात् मिथ्यात्व के पांच भेद, अविरति के पांच भेद, प्रमाद के पन्द्रह भेद, योग के तीन भेद और क्रोध आदि कषायों के चार भेद जानना चाहिए।

29. नं. गाथा में सामान्यतः भावास्त्रव एवं द्रव्यास्त्रव की परिभाषा देने के बाद 30 नं. गाथा में आचार्य श्री ने क्रम प्राप्त भावास्त्रव की सूत्रबद्ध व्यापक परिभाषा दी है। पूर्व में बताया गया था कि आस्त्रव के मूल कारण वैभाविक उपयोग एवं योग है। वैभाविक भाव की दृष्टि से उपयोग 1 प्रकार होते हुये भी उसके उत्कृष्ट प्रतिपत्ति से असंख्यात् लोक प्रमाण भाव होते हैं जिसे अध्यवसाय स्थान, कषाय स्थान, बंध स्थान आदि नाम से अधिक-अधिक कर सकते हैं। इस गाथा में आचार्य श्री ने प्रतिपादन करने की उत्कृष्ट प्रणाली एवं बहुप्रचलित प्रणाली मध्यम प्रतिपत्ति का सहारा लिया है।

1. **मिथ्यात्वः**— सर्वज्ञ हितोपदेशी द्वारा प्रतिपादित सत्य-तथ्य से विपरीतरूप अंध श्रद्धा को मिथ्यात्व कहते हैं। 363 से लेकर संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त

प्रकार के भी मिथ्यात्व होते हैं। तथापि यहाँ पर (1) एकान्त मिथ्यात्व (2) विपरीत मिथ्यात्व (3) विनय मिथ्यात्व (4) संशय मिथ्यात्व (5) अज्ञान मिथ्यात्व को ग्रहण किया गया है।

1. **एकान्त मिथ्यात्वः**— वस्तु में अनेक गुण धर्म होने के कारण वस्तु का स्वरूप अर्थात् धर्म अनेकान्तात्मक है। परन्तु कदाग्रह से, हठाग्रह से उनमें से कोई एक ही धर्म को अथवा गुणों को स्वीकार करके अवशेष गुण एवं धर्म को स्वीकार न करना एकान्त मिथ्यात्व है। जैसे-ब्रह्म को ही सत्य मानना, जगत् को मिथ्या मानना। संसारी जीव को भी एकान्ततः मुक्त मानना आदि।

2. **विपरीत मिथ्यात्वः**— सत्य से विपरीत मान्यता विपरीत मिथ्यात्व है। जैसे-विश्व को शून्य मानना, चैतन्य मुक्त जीव का अभाव मानना आदि-आदि।

3. **विनय मिथ्यात्वः**— “गंगा गये गंगादास, जमुना गये जमुनादास” इस कथन के अनुसार सत्य की परीक्षा किये बिना सच्चे देव-शास्त्र गुरु तथा मिथ्या देव-शास्त्र-गुरु को सच्चे धर्म एवं मिथ्याधर्म को समान भाव से मानना विनय मिथ्यात्व है।

4. **संशय मिथ्यात्वः**— सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्रतिपादित एवं उनके कथनानुसार लिखे हुआ ग्रंथ के विषयों को सत्य है या नहीं? पुण्य या पापका फल मिलता है या नहीं? इस प्रकार की भ्रम बुद्धि को भी संशय मिथ्यात्व कहते हैं।

5. **अज्ञान मिथ्यात्वः**— जिसमें हित-अहित विवेक का अत्यन्त अभाव है तथा कपोल-कल्पित, रूढ़ि एवं मिथ्या-परम्पराओं को धर्म मानना अज्ञान मिथ्यात्व है।

2. **अविरति :**— हिंसा, असत्य, चोरी अब्रह्म और परिग्रहरूप पाचों पापों का त्याग नहीं करना पांच अविरति है। प्रकारान्तर से पांच इन्द्रिय एवं मन की प्रवृत्ति को नहीं रोकना और षट्काय जीव की विराधना ऐसी बारह प्रकार की अविरति भी है।

3. **प्रमाद :**— आत्मोन्नति के कारणभूत अपने कर्त्तव्यों में, अपने धर्म में क्रोधादि कषायों से प्रेरित होकर, अनुत्साहित होना, सतर्कता नहीं रखना, आलसी बनना प्रमाद है। 4 कषाय— (क्रोध, मान, माया, लोभ) 4 विकथा— (राजकथा, स्त्री कथा भोजन कथा, चोर कथा) 5 इन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, ग्राण चक्षु और कर्ण) निद्रा और राग इस तरह 15 प्रमाद के भेद हैं।

4. योग :— मन, वचन, काय के परिसंदन को योग कहते हैं। मन योग, वचन योग और काय योग ये योग के तीन भेद हैं। अथवा 4 मनोयोग, 4 वचन योग एवं 7 काय योग मिलाकर योग के 15 भेद भी हैं।

**द्रव्यास्रव की परिभाषा एवं भेद**

ज्ञानावरणादीणं जोग्यं जं पुग्गलं समास्वदि।  
दव्यास्रवो स नेओ अणेयभेऽो जिणक्खादो॥(31)

ज्ञानावरणादीनां योग्यं यत् पुद्गलं समास्वति।  
द्रव्यास्रवः सः ज्ञेयः अनेक भेदः जिनाख्यातः॥

That influx of matter which causes Jnanavaraniya etc. is to be known as Dravyasrava as called by the Jina and possessing many varieties.

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल आता है उसके द्रव्यास्रव जानना चाहिये। वह अनेक भेदों सहित है, ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है।

योग एवं उपयोग रूपी भावास्रव के कारण कर्म योग्य पुद्गलों का आगमन होना द्रव्यास्रव है। जिस प्रकार वायु से चालित धूलि द्वारा एवं गवाक्ष (खिड़की) के माध्यम से घर में प्रवेश करती है उसी प्रकार कर्म वर्गणा रूप पुद्गल द्रव्य योग एवं उपयोग के द्वार से आत्मा में जो प्रवेश करता है उसे द्रव्यास्रव कहते हैं। यह द्रव्यास्रव सामान्यतः एक होते हुए भी पुण्य-पाप एवं धाति-अधाति रूप से दो प्रकार के हैं। (1) ज्ञानावरणीय (2) दर्शनावरणीय (3) वेदनीय (4) मोहनीय (5) आयु (6) नाम (7) गोत्र (8) अन्तराय के भेद से 8 प्रकार के भी हैं। ज्ञानावरणीय के 5, दर्शनावरणीय के 9, वेदनीय के 2, मोहनीय के 28, आयु के 4, नाम के 93, गोत्र के 2 और अन्तराय के 5 इस प्रकार 148 प्रकार के भी हैं। इतना ही नहीं, इसके संख्यात-असंख्यात भेद भी हो जाते हैं।

सार्वजनिक सम्पत्ति जनता जनार्दन की है। उसका दुरुपयोग महापराध है। उसके प्रयोग का अधिकार कर्तव्य पालन करके प्राप्त करो।

— आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

परिच्छेद - 7

## भाव बन्ध एवं द्रव्य बन्ध

बञ्जदिकम्यं जेण दु चेदणभावेण भावबन्धो सो।  
कम्मादपदेसाणं अणोण्णपवेसणं इदरो (32)॥  
बध्यते कर्म येन तु चेतनभावेण भावबन्धः सः।  
कर्मात्मप्रदेशानां अन्योन्यप्रवेशनं इतरः॥

That conscious state by which Karma is bound (with the soul) is called Bhava-bandha, while the interpenetration of the Pradesds of Karma and the soul is the other (i.e. Dravyabandha)

जिस चेतन भाव से कर्म बंधता है वह तो भाव बंध है और कर्म तथा आत्मा के प्रदेशों का परस्पर प्रवेशन रूप अर्थात् कर्म और आत्मा के प्रदेशों का एकाकार होने रूप दूसरा द्रव्य बंध है।

आस्रव के बाद जीव एवं पुद्गल की जो अवस्था विशेष होती है उसे बंध कहते हैं। गाय को जैसे रस्सी से बांधते हैं या कागज को गोंद से चिपकाते हैं उसी प्रकार बंध यहाँ नहीं होता है परन्तु यह बंध लोहे को अग्नि से गर्म करने पर जिस प्रकार अग्नि और लोहे का संश्लेष बंध (अन्योन्य प्रदेश) होता है उसी प्रकार होता है। यह बंध भी दो प्रकार के हैं। 1 द्रव्य बंध 2 भाव बंध। मिथ्यात्व आदि वैभाविक भाव, भाव बंध है। तो कर्म परमाणु का जीव प्रदेशों में संश्लेषित बन्ध हो जाना द्रव्य बंध है। बृहद द्रव्य संगृह में संस्कृत टीका में भी कहा गया है। ‘मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपेण वाऽशुद्धचेतनभावेन परिणामेन बध्यते ज्ञानावरणादि कर्म येन भावेन स भावबन्धो भण्यते। “कम्मादपदेसाणं अणोण्णपवेसणं इदरो” कर्मात्मप्रदेशानामात्मप्रदेशानां च क्षीरनीरवदन्योन्य प्रवेशमितरः। तेनैव भावबन्ध निमित्तेन कर्मप्रदेशानामात्मप्रदेशानां च क्षीरनीरवदन्योन्य प्रवेशनं संश्लेषो द्रव्यबन्ध इति।

मिथ्यात्व राग आदि में परिणति रूप अशुद्ध चेतन भाव स्वरूप जो परिणाम है उससे जो कर्म बंधता है वह भावबंध कहलाता है। कर्म और आत्मा के प्रदेशों का परस्पर प्रवेशनरूप, द्रव्य बंध (दूसरा) है। अर्थात् उसी पूर्वोक्त भावबंध के निमित्त से कर्म के प्रदेशों का और आत्मा के प्रदेशों का जो दूध तथा जल की भौति एक दूसरे में प्रवेश होना अर्थात् मिल जाना है सो द्रव्य बंध है।

## बन्ध के भेद व कारण

पयडि द्विदिअण भागपदे सभेदादु चदुविधो बंधो।

जोगा पयाडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति॥(33)

प्रकृतिस्थित्यनुभागपदेशभेदात्, तु चतुर्विधो बंधः।

योगात् प्रकृति पदेशौ स्थित्यनुभागौ कषायतः भवतः॥

Bandha is of four kinds, according at the (subdivisions, viz,) Prakriti, Sthiti, Anubhage and Pradesa, Prakriti and Pradesa are (produced) from yoga, but Sthiti and Anubhage are from Kasaya.

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन भेदों से बंध चार प्रकार का है। इनमें योगों से प्रकृति तथा प्रदेशबंध होते हैं और कषायों से स्थिति तथा अनुभाग बंध होते हैं।

वर्तमान गाथा के पूर्वार्ध में बंध के भेद एवं उत्तरार्ध में उस बंध के कारण को बताया गया है।

सामान्य दृष्टिसे यह बंध एक होते हुए भी विशेष दृष्टि से इसके अनेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं। द्रव्यबंध, भावबंध के भेद से दो भेद, कर्म बंध, नोकर्मबंध भावबंध के भेद से तीन प्रकार के हैं (1) प्रकृतिबंध (2) स्थितिबंध (3) अनुभव (अनुभाग) (4) प्रदेशबन्ध के भेद से बन्ध चार प्रकार के हैं। ज्ञानावरणादि आठ कर्म के भेद से बन्ध आठ प्रकार के भी हैं। 148 (एक सौ अड़तालीस) भेद रूप कर्म की अपेक्षा बंध 148 प्रकार के भी हैं। परन्तु मुख्यतः प्रकृति आदि के प्रकार के बंध के भेदों का वर्णन यहाँ पर कर रहे हैं।

महान् तत्त्वज्ञ दार्शनिक महर्षि उमास्वामी ने ज्ञान-विज्ञान-धर्म एवं दर्शन की अनुपम कृति तत्त्वार्थ सूत्र में चार प्रकार के बंधों का वर्णन करते हुए कहा भी है—  
प्रकृतिस्थित्यनुभव प्रदेशास्तद्विधयः॥ (3) (रा.वा. अ.8)

प्रकृति स्थिति अनुभव (अनुभाग) और प्रदेश के भेद से बंध चार प्रकार का है।

### (I) प्रकृति बंध

प्रकृतिः स्वभाव इत्यनर्थान्तरम् ॥ (4)

(रा.वा.अ.पृ.. 452)

प्रकृति और स्वभाव ये एकार्थवाची शब्द हैं। जैसे — नीम की प्रकृति क्या है?

नीम का स्वभाव तिक्तता है गुड का स्वभाव या प्रकृति मधुर है अर्थात् नीम की प्रकृति कड़आपन है और गुड़ की प्रकृति मधुरता है उसी प्रकार ज्ञानावरणीय की प्रकृति अथवा स्वभाव अर्थ ज्ञान नहीं होने देना अतः प्रकृति और स्वभाव एकार्थवाची है। इसी प्रकार दर्शनावरण की प्रकृति (स्वभाव) है अर्थ का दर्शन नहीं करने देना, वेदनीय का स्वभाव है सुख-दःख का संवेदन कराना दर्शन मोहनीय की प्रकृति है तत्त्वार्थ श्रद्धान नहीं होने देना, चरित्र मोहनीय की प्रकृति है असंयम परिणाम होना, आयु का स्वभाव है भव धारणा, नामकर्म की प्रकृति है नारक तिर्यच आदि व्यवहार कराना, गोत्र का स्वभाव है उच्च नीच का व्यवहार कराना तथा अंतराय कर्म का स्वभाव है दानादि में विज्ञ करना। इस प्रकार के कार्य जिससे उत्पन्न होते हैं वह प्रकृति बंध है। अपादान साधन से निष्पन्न यह प्रकृति शब्द है।

### (II) स्थिति बन्ध

तत्स्वभावप्रच्युतिः स्थितिः॥ (15)

उस स्वभाव से च्युत ना होना स्थिति है अर्थात् उस स्वभाव की अप्रच्युति स्थिति कहलाती है। जैसे—बकरी, गाय, भैंस आदि के दूध का अपने माधुर्य स्वभाव से च्युत नहीं होना स्थिति है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय आदि कर्म—प्रकृति का अपने अर्थानगमन आदि (अर्थों का ज्ञान नहीं हो, वेदना आदि) स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है।

### (III) अनुभाग बंध

तद्रसविशेषोऽनुभवः॥ (6)

कर्मों के इस विशेष (फलदान शक्ति विशेष) को अनुभाग बंध कहते हैं। जैसे— बकरी गाय भैंस आदि के दूध में तीव्र मंद आदि भाव से रस विशेष होता है अर्थात् दूध सामान्य होते हुए भी उसमें स्निग्धता, मधुरता आदि में विशेषता होती है उसी प्रकार कर्म पुद्गलों की स्वकीय फलदान शक्ति के सामर्थ्य विशेष को अनुभव / अनुभाग बंध कहते हैं।

### (IV) प्रदेश बन्ध

इयत्ताऽवधारणं प्रदेशः॥ (7)

इयत्ता के अवधारण को प्रदेश बन्ध कहते हैं अर्थात् कर्म रूपसे परिणत पुद्गल स्कन्धों के परमाणुओं की गणना को प्रदेश बंध कहते हैं।

तत्र योग निमित्तौ प्रकृति प्रदेशौ ॥ (9)

उन बंध के विकल्पों में प्रकृति बंध और प्रदेश बंध योग के निमित्त से होते हैं ऐसा जानना चाहिये।

स्थित्यनुभवौ कषायहेतुकौ ॥ (10)

स्थिति बंध और अनुभाग बंध कषाय के कारण होता है अर्थात् स्थिति बंध और अनुभाग बंध कषाय हेतुक हैं ऐसा जानना चाहिए। इन कषायों के तारतम्य से स्थिति अनुभाग में विचित्रता आती है क्योंकि कारण के अनुरूप ही कार्य होता है।

### I. प्रकृति बन्ध

जीव को परतंत्र करने रूप स्वभाव के कारण कर्म प्रकृति एक होते हुए भी विभिन्न कार्य भेद में इन प्रकृतियों में भी आठ भेद हो जाते हैं। यथा— (1) ज्ञानावरणीय (2) दर्शनावरणीय (3) वेदनीय (4) मोहनीय (5) आयु (6) नाम (7) गोत्र (8) अन्तराय। इन प्रकृतियों के स्वभाव अर्थात् कार्य निम्न प्रकार होते हैं।

पठपडिहारसिमज्जाहत्तिचित्तकुलालभंडयारीण।

जह एदेसी भावा तहवि य कम्मा गुणेयब्बा॥ (21)

(गो. सा. कर्मकाण्ड)

पट अर्थात् देवता के मुख के उपर का वस्त्र (1) प्रतिहार अर्थात् राजद्वार पर बैठा हुआ द्वारपाल (छोड़ीवान) (2) असी (शहद लपेटी तलवारकी धार) (3) शराब (4) काठ का यन्त्र – खोड़ा (5) चित्राकार/चतेरा (6) कुंभार (7) भण्डारी (खजांची) (8) इन आठों के जैसे जैसे अपने अपने कार्य करने के भाव होते हैं उसी तरह क्रम से कर्मों के भी स्वभाव समझना चाहिये।

उपरोक्त उदाहरण आठों कर्म के लिए क्रम से है इसका विशेष व्याख्यान नीचे कर रहे हैं।

### 1. ज्ञानावरणीय

वस्त्यसेदभावो जह णासेदि मल विमेलणाच्छण्णो।

अण्णाण मलोच्छण्णं तह णणां होदिणादव्यं॥ (165)

(समयसार)

मैल के विशेष सम्बन्ध से दबकर वस्त्र का श्वेतपना नष्ट हो जाता है वैसे ही जीव का मोक्ष का हेतूभूत ज्ञान गुण भी अज्ञान रूपी मल से (ज्ञानावरण कर्म से) दबकर नष्ट हो जाता है।

जैसे— दर्पण के ऊपर धूलि लगने से दर्पण की स्वच्छता छिप जाती है या सूर्य के सन्मुख बादल आने पर सूर्य की रश्मि छिप जाती है व भगवान् के सामने वस्त्र रहने पर भगवान् का रूप ढक जाता है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म जीव के ज्ञान गुण को ढक देता है।

### 2. दर्शनावरणीय

सामान्य सत्ता अलोकन रूप अन्तः चेतना रूपी प्रकाश को आवरण करने वाला दर्शनावरणीय कर्म है। जैसे द्वारपाल, राजा, मंत्री आदि मालिक को देखने नहीं देता है अर्थात् देखने के लिये रोक देता है। उसी प्रकार यह कर्म वस्तु का सामान्य अवलोकन रूप दर्शन नहीं होने देता है।

### 3. वेदनीय

अक्खाणं अणुभवणं वेयणियं सुहस्तवयं सादं।

दुक्ख सस्तवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं॥ (14)

(गो. कर्मकाण्ड)

इन्द्रियों का अपने अपने रूपादि विषय का साता रूप में अनुभव करना सातावेनीय है। उसमें दुःख रूप अनुभव करना असाता वेदनीय है। उस सुख-दुःख का अनुभव जो करावे वह वेदनीय कर्म है।

जो कर्म वेदन किया जाता है उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। इस अपेक्षा सभी कर्म वेदन किए जाते हैं इसलिये सभी कर्म वेदनीय होने पर भी विशेष रूप से संसारी जीव सुख-दुःख का अधिक रूप से वेदन करता है इसलिए सुख-दुःख को देने वाले कर्म को ही वेदनीय कर्म कहते हैं। दूसरी बात है कि वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म के भेद जो रागद्वेष हैं उनके उदय के बल से ही धातिया कर्मों की तरह जीवों का घात करता है। अर्थात् इन्द्रियों के रूपादि विषयों में से किसी में से किसी में रति (प्रीति) और किसी में अरति (द्वेष) का निमित्त पाकर सुख तथा दुख स्वरूप साता और असाता का अनुभव करके जीव को अपने ज्ञानादि गुणों में उपयोग नहीं करने देता, परस्वरूप में लीन करता है।

### 4. मोहनीय कर्म

जो जीव को माहित करें वह मोहनीय कर्म है। इस दृष्टि से मोहनीय कर्म सामान्य

से एक होते हुए भी विशेष अवस्था में दो भेद हैं। जो दर्शन गुण को मोहित करके विपरीत करे वह दर्शन मोहनीय है। जो चारित्र गुण को मोहित करके विपरीत करे वह चरित्र मोहनीय है।

#### (A) दर्शन मोहनीय -

सम्मत पडिणिबद्धं मिछत्तं जिणवरेहिं परिकहिं  
तस्सोदयेण जीवो मिछादिट्ठित्तिणादब्बो॥ (168)

(समयसार)

आत्मा के सम्यकत्व गुण को रोकने वाला मिथ्यात्व कर्म है जिसके उदय से यह जीव मिथ्यादृष्टि हो रहा है।

मिछत्तं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणओ होदि।

ण य धर्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो॥ (17)

(गो. जीव)

उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभव करने वाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्व की ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक धर्म अर्थात् वस्तु स्वभाव को अथवा मोक्ष के कारण भूत रलत्रयात्मक धर्म को भी पसन्द नहीं करता। इसमें दृष्टान्त देते हैं जैसे – पित ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे दूध आदि रस को पसन्द नहीं करता। उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता।

मिछाइट्टी जीवो उवइट्टं पवयणं सद्हदि

सद्हदि असद्भावं उवइट्टं वा अणुवइट्टं॥ (18)

(गो. जीव)

मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अहंत आदि के द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ ये तीन, इनकी श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन-प्रवचन अर्थात् परमागम, प्रकृष्ट रूप से जो कहा जाता है अर्थात् प्रमाण के द्वारा कहा जाता है, वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ, इन निरुक्तियों 'प्रवचन' शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते हैं तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्यारूप प्रवचन यानि आप्त आगम पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

#### (B) चारित्र मोहनीय

चारित्र पडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहिं परिकहिं  
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णादब्बो॥ (170)

समयसार

चारित्र गुण को रोकने वाला कषाय भाव जिसके उदय से यह जीव चारित्र रहित अर्थात् अचरित्री हो रहा है ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने बतलाया है।

#### 5. आयुकर्म :-

एत्यनेन गच्छति नारकादि भवमित्यायुः।

(राज. अ.8 पृ. 456)

जिस कर्म के उदय से जीव नारकादि पर्यायों को प्राप्त होता है, नारकादि भवों से वास करता है, उसे आयु कहते हैं। इसका स्वभाव लोहे की सांकल वा काठके यंत्र के समान है। जैसे – सांकल अथवा काठ का यंत्र पुरुष को अपने स्थान में ही स्थित रखता है दूसरी जगह नहीं जाने देता, ठीक उसी प्रकार आयु कर्म जीव को मनुष्यादि पर्याय में स्थित (मौजूद) रखता है, दूसरी जगह नहीं जाने देता।

#### 6. नाम कर्म:-

गदिआदि जीव भेदं देहादी पोग्गलाण भेदं च।

गदियंतरपरिणमनं करेदि णामं अणेयविहं । (12)

(गो. कर्म)

नाम कर्म गति आदि अनेक तरह का है। वह नारकी वैगैरह जीव की पर्यायों के भेदों को और औदारिक शरीर आदि पुद्गल भेदों को तथा जीव के एक गति से दूसरी गति रूप परिणमन को करता है। अर्थात् चित्रकार की तरह अनेक कार्य को किया जाता है। नाम कर्म के कारण ही विभिन्न प्रकार वैचित्र्य पूर्ण शरीर के अवयव, इन्द्रियों शरीर के आकार-प्रकार आदि का निर्माण होता है। शुभ नाम कर्म से सुन्दर प्रशस्त शरीर आदि की उपलब्धि होती है तथा अशुभ नाम कर्म के उदय से असुन्दर हीनांग अधिकांग कि विकलांग सहित शरीर की प्राप्ति होती है।

#### 7. गोत्र कर्म:-

संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।

उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं। (13)

89

कुल की परिपाटी के क्रम से चला आया जो जीव का आचरण उसकी गोत्र संज्ञा है, अर्थात् उसे गोत्र कहते हैं। उस कुल परम्परा में ऊँचा (उत्तम) आचरण हो तो उसे उच्च गोत्र कहते हैं। यदि निम्न आचरण हो तो वह नीच गोत्र कहा जाता है। जैसे, एक कहावत है कि शियार का एक बच्चा बचपन से सिंहनी ने पाला। वह सिंह के बच्चों के साथ ही खेला करता था। एक दिन खेलते हुए वे सब बच्चे किसी जगह में गये। वहाँ उन्होंने हाथियों का समूह देखा। देखकर जो सिंहनी के बच्चे थे वे तो हाथी से सामने हुए लेकिन वह सियार जिसमें कि कुल का डरपोकपने का संस्कार था हाथी को देखकर भागने लगा तब से सिंह के बच्चे भी अपना बड़ा भाई समझ कर उसके साथ पीछे लौटकर माता के पास आये, और उस शियार की शिकायत की कि इसने हमें शिकार से रोका। तब सिंहनी ने उस शियार के बच्चे से एक श्लोक कहा जिसका तमलब यह है कि अब हे बेटा! तू यहाँ से भाग जा, नहीं तो तेरी जान नहीं बचेगी।

**शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रकः। यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो  
गजस्तत्र न हन्ते”।**

अर्थात् हे पुत्र! तू शूर वीर है, विद्यावान है, देखने योग्य (रूपवान) है, परन्तु जिस कुल में तू पैदा हुआ है उस कुल में हाथी नहीं मारे जाते।

#### 8. अन्तराय कर्मः—

**बहियोगो वा, यस्मिन् मध्येऽवास्थि  
दात्रादीनां-दानादिक्रियाऽभावः  
दानादीच्छाया बहिर्भावो वा सोऽन्तरायः।**

दाता और पात्र आदि के बीच में विध्न करावे वा जिस कर्म के उदय से दाता और पात्र के मध्य में अंतर ढाले उसे अन्तराय कहते हैं अथवा जिसके रहने पर दाता आदि-दानादि क्रियाएं नहीं कर सके, दानादि की इच्छा से पराङ्मुख हो जावे, वह अन्तराय कर्म है।

जीव के वैभाविक भाव एवं योग के कारण कर्म पुद्गलों का उपर्युक्त ज्ञानावरणीयादि शक्ति सहित हो जाना ही ‘प्रकृति बंध’ है।

जीव के उपयोग एवं योग को निमित्त पाकर जो कर्म परमाणु आकर्षित होकर जीव के साथ बंधते हैं उसे ‘प्रदेश बंध’ कहते हैं। ये प्रदेश संख्यात, असंख्यात

या जघन्य अनंत भी नहीं होते हैं पर मध्यम अनंतानंत होते हैं क्योंकि जीव महान् अनंत शक्ति सम्पन्न द्रव्य है और उसमें असंख्यात प्रदेश भी होते हैं। जिस प्रकार एक मदोन्मत्त हाथी को एक तिनके से बांधकर परतंत्र नहीं कर सकते हैं उसी प्रकार संख्यात, असंख्यात परमाणु जीव को बांधकर परतंत्र नहीं कर सकते हैं। जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं इसलिये असंख्यात को बांधने के लिये कम से कम असंख्यात चाहिये ही। परन्तु असंख्यात आत्म प्रदेश के ऊपर अनादिकालीन कर्म बंध की संतति की अपेक्षा एक-एक आत्म प्रदेश में अनंतानंत कर्म परमाणु बंधे हुये हैं। नवीन कर्म बंध प्राचीन कर्म बंध में होता है इसलिये भी संख्यात, असंख्यात एवं जघन्यानंत कर्म परमाणु भी एक समय में नहीं बंधते हैं। तत्वार्थ सूत्र एवं तत्वार्थ वार्तिक आदि प्राचीन ग्रंथ में कहा भी है।

#### 4. प्रदेश बन्ध

**नामप्रत्ययः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः  
सर्वात्मप्रदेशोष्वनंतानंतप्रदेशाः॥ (24)**

(तत्वार्थवार्तिक, अ. 8, पृ. 510)

अपने नाम के अनुसार सभी भवों में योगविशेष से आने-वाले, आत्मा के सम्पूर्ण प्रदेशों में सूक्ष्म एकक्षेत्रावगाही अनन्तानंत कर्म पुद्गल प्रदेश बन्ध हैं।

#### सर्वेषु भवेषु सर्वतः॥ (2)

सभी भवों में होने वाला सर्वतः कहा जाता है। ‘अन्यतः’ भी देखा जाता है, इस प्रकार ‘तस् प्रत्यय करने पर सर्व भवों में होने वाला ‘सर्वतः’ ऐसा बनता है। इस ‘सर्वतः’ शब्द से कला का ग्रहण किया गया है। एक जीव के अतिक्रम्त अनंत भव और आगामी-असंख्यात, संख्यात एवं अनंत भव होते हैं। उन सर्व भवों में कर्मों का आम्रव होता है।

**योगविशेषादिति वचनं निमित्तनिर्देशार्थम्॥(3)**

‘योगविशेष’ वचन निमित्त के निर्देश के लिये है। मन, वचन, काय रूप योग का लक्षण पूर्व में कह दिया गया है। परस्पर विशिष्य होता है, वह विशेष है। योगविशेष – मन, वचन, काय, के निमित्त से कर्म रूप पुद्गलों का आगमन होता है, अतः इस ‘योग’ विशेष से निमित्त का (कर्मों के आने के कारण का) निर्देश किया गया है।

**सूक्ष्मग्रहणं ग्रहणयोग्यस्वभावप्रतिपादनार्थम्॥(4)**

सूक्ष्म का ग्रहण कर्म योग्य पुद्गलों के स्वभाव का प्रतिपादन करने के लिये है, अर्थात् कर्म रूप से ग्रहण करने योग्य पुद्गल सूक्ष्म हैं, स्थूल नहीं, इसका प्रतिपादन करने के लिये सूक्ष्म शब्द का प्रयोग किया है।

### एकक्षेत्रावगाहवचनं क्षेत्रान्तरनिवृत्यर्थम्॥ (5)

'एक क्षेत्रावगाह' वचन क्षेत्रान्तर की निवृत्ति के लिये है। आत्म प्रदेश और कर्म पुद्गल वर्गणाओं का अधिकरण (आकाश क्षेत्र) एक ही है, भिन्न-भिन्न अधिकरण नहीं है। अतः भिन्न अधिकरण की निवृत्ति के लिये 'एकक्षेत्रावगाह' यह पद दिया गया है।

### स्थिता इति वचनं क्रियान्तरनिवृत्यर्थम्॥ (6)

इस सूत्र में 'स्थिति' शब्द का प्रयोग क्रियान्तर की निवृत्ति के लिये है। स्थित ही कर्म भाव को प्राप्त होते हैं, चलते हुए नहीं। क्रियान्तर की निवृत्ति के लिये 'स्थिता' इस शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् स्थिता का तात्पर्य यह है कि स्थित पुद्गल, कर्म-भाव को प्राप्त होते हैं, चलते हुए नहीं। 'सूक्ष्म' के ग्रहण से कम कर्म के योग्य पुद्गलों के स्वभाव का निर्देश किया गया है। अर्थात् 23 प्रकार के पुद्गल वर्गणाओं में जो कर्म योग्य पुद्गल वर्गण है वही प्रदेश बन्ध में ग्राह्य है।

### सर्वात्मप्रदेशेष्विति वचनमेकप्रदेशाद्यपोहार्थम्॥ (7)

'सर्व आत्म प्रदेशो' में ऐसा कहने पर एक प्रदेश आदि का निषेध किया गया है। एक, दो, तीन चार आदि प्रदेशों में आत्मा का कर्म प्रदेशों की प्रवृत्ति नहीं है अपितु ऊपर, नीचे, बीच में सब जगह सर्वात्मप्रदेशों में व्याप्त होकर प्रत्येक आत्मप्रदेश में कर्म-पुद्गल स्थिति है, इस बात का ज्ञान कराने के लिये 'सर्वात्म प्रदेशेषु' यह कथन किया है। अर्थात् सर्वात्म प्रदेशों में कर्मवर्गणायें स्थित हैं। एक दो आदि में नहीं।

### अनन्तानन्तप्रदेशवचनं प्रमाणान्तरव्यपोहार्थम्॥ (8)

'अनन्तानन्त प्रदेश' वचन का ग्रहण प्रमाणान्तर के निराकरण के लिये है। ये न तो संख्यात हैं, न असंख्यात हैं और न अनन्त हैं अपितु अनन्तानन्त हैं इसका प्रतिपादन करने के लिये 'अनन्तानन्त' शब्द का ग्रहण है। एक समय में आत्मा के साथ संबंध को प्राप्त करने वाले ये पुद्गल स्कन्ध अभव्यों से अन्तरुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। वे – घनांगुल के असंख्ये भाग रूप क्षेत्रावगाही एक, दो, तीन, चार संख्यात असंख्यात समय की स्थिति वाली पाँच वर्ण, पाँच

रस, दो गन्ध और चार स्पर्श वाली तथा आठ प्रकार के कर्म रूप से परिणमन करने के योग्य पुद्गल वर्गणायें आत्मा के द्वारा योगों के कारण आत्मसात् की जाती है, वह प्रदेशबन्ध है। इस प्रकार संक्षेप से प्रदेश बंध का वर्णन समझना चाहिये। तत्वार्थसार में कहा भी है-

घनांगुलस्यासंख्येभागक्षेत्रावगाहिः ॥ (47)

एकद्वित्र्याहासंख्येय समयस्थितिकांस्तथा।

उष्णरुक्षहिमस्तिर्थान्सर्व वर्णरसान्वित्तान् ॥ (48)

सर्वकर्म प्रकृत्यर्हान् सर्वेष्विषय भवेषु यत्।

द्विविधान् पुद्गलस्कन्धान् सूक्ष्मान् योगविशेषतः॥ (49)

सर्वेष्वात्मप्रदेशेषु शेषवनन्तानन्तप्रदेशेषु शेषान् ॥

आत्मसात्कुरुते जीवः स प्रदेशोऽभिधीयते।

जो घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण एक क्षेत्र में स्थित हैं, जिनकी एक, दो, तीन आदि असंख्यात समयों की स्थिति है, जो उष्ण, रुक्ष, शीत और स्निग्ध स्पर्श से सहित हैं, समस्त वर्णों और समस्त रसों से सहित हैं, समस्त कर्म-प्रकृतियों के योग्य हैं, पुण्य और पाप के भेद दो प्रकार के हैं, सूक्ष्म हैं, समस्त भवों में जिनका बन्ध होता है तथा जो समस्त आत्मप्रदेशों में अनन्तानन्त प्रदेशों को लिये हुए हैं ऐसे पुद्गलस्कन्धों को कार्मण वर्गण के परमाणु समूह को यह जीव जो अपने अधीन करता है वह प्रदेशबन्ध कहलाता है।

सर्वेसिं चेव कम्माणं, पएसगगमणन्तगं।

गणिष्ठय - सत्ताईयं, अन्तो सिद्धाण आहियं ॥ (96)

(उत्तराध्ययन सूत्र, पृ. 359)

एक समय में ग्राह्य बद्ध होने वाले सभी कर्मों का प्रदेशाग्रकर्म पुद्गल रूप द्रव्य अनंत होता है। वह ग्रान्थिग तत्त्वों से अर्थात् ग्रन्थि भेद न करने वाले अनन्त अभव्य जीवों से अनन्त गुण अधिक और सिद्धों के अनन्तवें भाग जितना होता है।

इस गाथा में योग से प्रकृति एवं प्रदेश बंध एवं कषाय से स्थिति एवं अनुभागबंध होता है ऐसा निर्देश कहा गया है। तो क्या स्थिति अनुभाग बंध के लिये अन्यान्य ग्रंथ में जो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमादादि को कारण बताया गया है वे सब क्या मिथ्या हैं? अकिञ्चित्कर है? या धर्म द्रव्य जिस प्रकार गति हेतु में कारण है वैसे

मिथ्यात्व कर्म बंध में उदासीन कारण है ? नहीं, कदापि नहीं। इतना ही नहीं, इस ग्रंथ में ही मिथ्यात्वको आस्रव के साथ-साथ प्रकृति प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बंध के लिए कारण बताया है। मूल-द्रव्य संग्रह का अन्त विश्लेषण करने से तथा उसकी संस्कृत टीका से यह प्रतिभासित हो जाता है। यथा—

आस्रवे बन्धे च मिथ्यात्वाविरत्यादिकारणानि समानानि को विशेष इति चेत्, नैवं  
— प्रथमक्षणे कर्मस्कन्धानामागमनमास्रव, आगमनानंतरं —

**द्वितीयक्षणादौ जीवप्रदेशेष्ववस्थानं बन्ध इति भेदः।**

**यत एवं योगकषायाद्बन्धचतुष्टयं भवति तत् एव बन्ध  
विनाशार्थं योगकषायत्यागनं निजशुद्धात्मनि भावना कर्तव्येति तात्पर्यम्।**

(बृ. द्रव्य संग्रह पृ. 75)

**शंका :-** आस्रव और बंध के होने में मिथ्यात्व, अविरति आदि कारण समान हैं। इसलिये आस्रव और बंध में क्या भेद है?

**समाधान :-** क्योंकि प्रथम क्षण में जो कर्म स्कन्धों का आगमन है, वह तो आस्रव है और कर्म स्कन्धों के आगमन के पीछे द्वितीय, तृतीय आदि क्षणों में जो उन कर्म स्कन्धों का जीव के प्रदेशों में रिथत होना है सो बंध है। यह भेद आस्रव और बंध में है। जिस कारण से कि योग और कषायों से प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग नामक चार बंध होते हैं उसी कारण से बंध का नाश करने के अर्थ योग तथा कषाय का त्याग करके अपने शुद्ध आत्मा में भावना करनी चाहिये। यह तात्पर्य है।

तत्त्वार्थ सूत्र आदि ग्रंथ में से भी मिथ्यात्व को बंध का कारण बताया गया है। यथा

**मिथ्यादर्शनाविरति प्रमादकषाययोगाबन्धहेतवः ।(1)**

Wrong belief, non abstinence, negligence, passions and activities are the cause of bondage.

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बंध के हेतु हैं।

“तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्” अर्थात् तत्त्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं। मित्यादर्शन इससे विपरीत है। अर्थात् “अतत्त्वार्थ श्रद्धानं मिथ्यादर्शनम्” अतत्वों का श्रद्धान करना या तत्वों का श्रद्धान नहीं करना मिथ्यादर्शन है। बन्ध प्रकरण

में बन्धों के कारण बतलाते हुए मिथ्यादर्शन को पहले ग्रहण करने का कारण यह है कि मिथ्यादर्शन समस्त बन्ध कारणों में से प्रथान एवं प्रथम कारण है। मिथ्यात्व को आगम शास्त्र में अनंत संसार का कारण होने से अनंत कहा गया है और उसके साथ रहने वाले क्रोध, मान, माया और लोभ को अनंतानुबंधी कहा गया है। अनादि मिथ्यादृष्टि जब एक बार भी सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर लेता है तब उसका अनंत संसार का विच्छेद हो जाता है केवल अधिक से अधिक अर्द्ध-पुद्गल परिवर्तन संसार रह जाता है। यदि वह चरम शरीरी है तो तद्भव में मोक्ष जा सकता है इसलिए समन्तभद्रस्वामी ने भी कहा है —

**न सम्यक्त्वसमं किं चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।**

**श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥ (34)**

(र. श्रावकाचार)

प्राणियों के तीन कालों और तीन लोक में भी सम्यग्दर्शन के समान कल्याणरूप और मिथ्यादर्शन के समान अकल्याणरूप अन्य वस्तु नहीं है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने के बाद अनेक पाप प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। यथा

**सम्यग्दर्शन शुद्धा नारकतिर्यनपुंसक स्त्रीत्वानि।**

**दुष्कुलविकृतल्पायुर्विद्रितां च त्रजन्ति नाष्टव्रतिका॥ (35)**

सम्यग्दर्शन से शुद्ध जीव व्रत रहित होने पर भी नारक, तिर्यक, नपुंसक और स्त्रीपने को तथा नीच कुल, विकलांग अवस्था, अल्पायु और दरिद्रता को प्राप्त नहीं होता।

मिथ्यात्व गुणस्थान के अंत में 16 पाप प्रकृतियों का बंध विच्छेद होता है यथा—

**मिच्छ त्ता हुं ड सं ३१ सं ४५ सं पत्ते यवखथा वरादावं ।**

**सुहुमतियं वियत्तिं दिय णियदुणियथाउंगं मिच्छं॥ (95)**

(गो. सा. कर्मकाण्ड)

1. मिथ्यात्व 2. हुण्डक संस्थान 3. नपुंसकवेद 4. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन
5. एकेन्द्रिय जाति 6. स्थावर 7. आतप 8. सूक्ष्मादि तीन अर्थात् सूक्ष्म 9. अपर्याप्त 10. साधारण, विकलेन्द्रिय तीन अर्थात् 11. दो इन्द्रिय 12. तीन इन्द्रिय 13. चौ इन्द्रिय 14. नरक गति 15. नरकगत्यानुपूर्वी 16. नरकायु। ये सोलह प्रकृतियां हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान के अंत समय में इनकी बंध व्युच्छित्ति

हो जाती हैं। अर्थात् मिथ्यात्व से आगे के गुणस्थानों में इनका बंध नहीं होता।

**परिणामादो बंधो परिणामो रागदोस मोह जुदो।**

**असुहो मोहपदेशो सुहो व असुहो हवदि रागो॥ (180)**

परिणाम से बंध होता है, वह परिणाम राग द्वेष मोह युक्त है। मोह और द्वेष अशुभ हैं राग शुभ अथवा अशुभ होता है।

इस प्रकार से मिथ्यादर्शन आदि पाँचों मिलकर या पृथक-पृथक बंध के हेतु हैं। खुलासा इस प्रकार है— मिथ्यादृष्टि जीव के पाँचों ही मिलकर बंध के हेतु हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्रूमिथ्यादृष्टि और अविरत सम्यग्दृष्टि के आदि के चार बंध के हेतु हैं। संयतासंयत के विरति और अविरति ये दोनों मिश्ररूप तथा प्रमाद, कषाय और योग ये बंध के हेतु हैं। अप्रमत्तसंयत आदि चार के योग और कषाय ये दो बन्ध के हेतु हैं। उपशांत कषाय, क्षीणकषाय और सयोगकेवली इनके एक योग ही बन्ध का हेतु है। अयोगकेवली के बन्ध का हेतु नहीं है।

(स्वतंत्रता के सूत्र, पृ. 466)

आचार्य कुन्द-कुन्द देव ने बारस अणुप्रेक्षा में भावपरावर्तन रूप भाव संसार का वर्णन करते हुए कहा है—

**सबे पयडिडिओ अणुभाग पदेसंबंधठण्णाणि।**

**जीवो मिछ्त्तवसा भमिदो पुण भाव संसारे॥ (29)**

(पृ. 16)

इस भाव परावर्तन रूप संसार में मिथ्यात्व के वशीभूत जीव ने सभी (आठों) कर्मों के प्रकृतिबंध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बंध और प्रदेश बन्ध के सभी स्थानों में बार-बार भ्रमण किया है। (दंसणमूलो धर्मो, पृ. 27)

उपरोक्त आगम के अकाट्य प्रमाण होते हुये भी कुछ श्रमणगण एवं पंडित आदि मिथ्यात्व को बंध के प्रकरण में अकिञ्चित्कर, उदासीन कारण या अधिकरण मानते हैं। यह मानना पूर्ण आगम विरुद्ध, कपोल-कल्पित, अविचारित-रम्य है। मिथ्यात्व आस्रव बंध में अकिञ्चित्कर नहीं है परन्तु अतिकर है, उदासीन नहीं है, पर प्रेरक कारण है, अधिकरण नहीं, अधिकरण है ऐसी आगमोक्त युक्ति परक सिद्धि मैंने ‘दंसण मूलो धर्मो तहा संसार मूलहेदु मिछ्त्तं’ में की है। विशेष जिज्ञासु उसका अध्ययन करें।

**परिच्छेद - 8**

## पुण्य एवं पाप के रूपसंग्रह एवं प्रभेद

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्यं पावं हवंति खलु जीवा।

सादं सुहाउणामं गोदं पुण्यं पराणि पावं च॥38

शुभाशुभभाव युक्ताः पुण्यं पापं भवंति खलु जीवाः।

सातं शुभायुः नाम गोत्रं पुण्यं पराणि पापं च॥

The Jivas consist of Punya and Papa surely having auspicious and inauspicious Bhavas (respectively). Punya is Satavedaniya, auspicious life, name and class, While Papa is (exactly) the opposite (of these).

शुभ तथा अशुभ परिणामों से युक्त जीव पुण्य और पाप रूप होते हैं। सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम तथा उच्च गोत्र नामक कर्मों की जो प्रकृतियाँ हैं वे तो पुण्य प्रकृतियाँ हैं और शेष सब पाप प्रकृतियाँ हैं।

इस गाथा में आचार्य श्री ने आस्रव एवं बन्ध के उत्तर भेद स्वरूप पुण्य-पाप का स्वरूप एवं उसके भेद प्रभेद का कथन किया है। ‘सुहअसुहभावजुत्ता पुण्यं पावहवंति खलु जीवा’ अर्थात् शुभ एवं अशुभ भावों से युक्त होकर जीव निश्चय से पुण्य पाप रूप में परिणमन करता है यह प्रतिपादन करके आचार्य श्री ने भाव पुण्य एवं भाव पाप का प्रतिपादन किया है। अर्थात् जो शुभोपयोग से युक्त जीव है वह पुण्य जीव है और जो अशुभोपयोग से युक्त जीव है वह पाप जीव है। शुभोपयोगका आरम्भ वस्तुतः सम्यग्दर्शन होने के बाद अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान में होता है। मिथ्यात्व गुणस्थान में शुभोपयोग नहीं हो सकता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना शुभोपयोग संभव नहीं है। गोम्घटसार में कहा भी है—

**जीवा पुणा हु सम्मग्नुसहिदा।**

**वदसहिदा विय पावा, तव्यरीया हवंति त्ति॥622**

जीव के दो भेद हैं— एक पुण्य और दूसरा पाप। जो सम्यक्त्व गुण से या व्रत से युक्त है उनको पुण्य जीव कहते हैं और इससे जो विपरीत है उसको पाप जीव

कहते हैं।

‘मिच्छाइद्वी पावा’ – मिथ्यादृष्टि पाप जीव है।

इससे सिद्ध होता है वैभवशाली राजा, महाराजा, देव भी मिथ्यात्व से सहित हैं तो पापी जीव है परन्तु सम्यग्दर्शन से सहित पशु, नारकी, गरीब मनुष्य भी पुण्यात्मा जीव है। वस्तुतः भाव पुण्य ही पुण्य है और भाव पुण्य के कारण जो कर्म परमाणु द्रव्य रूप में परिणमन करता है वह द्रव्य पुण्य है। ऐसे भाव पुण्य करने के लिए हमारे पूर्वार्थी भी उपदेश करते हैं एवं प्रेरित करते हैं।

**उद्धम मिथ्यात्वविषं भावय दृष्टिं च कुरु परां भक्तिम्।**

**भावनमस्काररतो ज्ञाने युक्तो भव सदापि॥1**

बृहद्ब्रह्म संग्रहः पृ. 124

मिथ्यात्व रूपी विष का वमन कर दो, सम्यग्दर्शन की भावना करो, उल्कृष्ट भक्ति को करो, और भाव नमस्कार में तत्पर होकर सदा ज्ञान में लगे रहो।

**पंचमहाब्रतरक्षां कोपचतुष्कस्य निग्रहं परमम्।**

**दुर्दान्तेन्द्रियविजयं तपः सिद्धिविधौ कुरुयोगम्॥2**

पांच महाब्रतों की रक्षा करो, क्रोध आदि चार कषायों का पूर्ण रूप से निग्रह करो, दुर्दान्त प्रबल इन्द्रिय रूप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो तथा बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का जो तप है उसको सिद्ध करने में उद्योग करो। इस प्रकार दोनों आर्याच्छन्दों से कहे हुए लक्षण सहित शुभ उपयोग रूप भाव परिणाम से तथा उसके विपरीत अशुभ उपयोग रूप परिणाम से युक्त परिणत जो जीव है वे पुण्य – पाप को धारण करते हैं अथवा स्वयं पुण्य पाप रूप हो जाते हैं।

तत्वार्थ सूत्र में कहा भी है—

शुभः पुण्यास्याशुभः पापस्य । 3

Asrva of 2 kinds : शुभ or good which is the inlet of virtue or meritorious karmas अशुभ or bad which is the inlet of vice or demeritorious karmas.

शुभयोग पुण्य का और अशुभयोग पाप का आस्रव है।

शुभयोग पुण्य और अशुभ योग पापास्रव का कारण है। हिंसा, असत्य भाषण, वध आदि की चिन्ता रूप अपध्यान अशुभ योग है। हिंसा, दूसरे की बिना दी हुई

वस्तु का ग्रहण चोरी, मैथुन-प्रयोग आदि अशुभ काययोग है। असत्य भाषण, कठोर मर्मभेदीवचन बोलना आदि अशुभ वचन योग है। हिंसक परिणाम, ईर्ष्या, असूया आदि रूप मानसिक परिणाम अशुभ मनोयोग है।

अशुभ योग से भिन्न अनन्त विकल्प वाला शुभ योग है। जैसे – अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन आदि शुभ काययोग है। अर्हत्त भक्ति, तप की रुचि, श्रुत का विनय आदि विचार शुभ मनोयोग है। सत्य, हित-मित वचन बोलना शुभ वाग्योग है।

शुभ परिणाम-पूर्वक होने वाला योग शुभयोग है और अशुभ परिणामों से होने वाला योग शुभयोग है और अशुभ परिणामों से होने वाला योग अशुभ योग कहलाता है। ‘पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्। कर्मणः स्वतन्त्र्य विवक्षायां पुनात्यात्मानं प्रीणयतीति पुण्यम्।’

**पारतन्त्र्यविवक्षायां करणत्वोपपत्तेः पूयतेऽनेनेति  
वा पुण्यम् तत्सदैव्यादि।**

तत्त्वार्थवार्तिक॥

जो आत्मा को पवित्र करे या जिससे आत्मा पवित्र किया जाता है, वह पुण्य कहलाता है। अथवा जिसके द्वारा आत्मा सुखसाता का अनुभव करे, वह सातावेदनीय आदि कर्म पुण्य है। स्वतन्त्र विवक्षा में जो आत्मा को पवित्र करता है, प्रसन्न करता है वह पुण्य है एवं कर्तृवाच्य में निष्पन्न पुण्य शब्द है। पारतन्त्र्य विवक्षा में कारण साधन से पुण्य शब्द निष्पन्न होता है जैसे जिसके द्वारा आत्मा पवित्र एवं प्रसन्न किया जाता है, वह पुण्य है।

‘तत्प्रतिद्वन्द्वरूपं पापम्। तत्यप्रतिद्वन्द्वरूपं पापमिति विज्ञायते। पापिति रक्षत्यात्मानम् अस्माच्छुभपरिणामादिति पुण्यस्य पापिभिधानमा तदसद्वेद्यादि।’ तत्त्वार्थवार्तिक पुण्य का प्रतिद्वन्द्वी (विपरीत) पाप है। जो आत्मा को शुभ से रक्षा करे अर्थात् आत्मा में शुभ परिणाम न होने दे वह पाप कहलाता है, वह असातावेदनीय आदि पापकर्म है।

प्रश्न – जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों ही का अविशेषता से तुल्य (समान) फल है प्राणी का परतन्त्र करना, वैसे ही पुण्य-पाप दोनों ही आत्मा को परतन्त्र करने में निमित्त कारण है। इन पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, यह पुण्य (शुभ) है, यह अशुभ है, पाप है, यह तो केवल संकल्प मात्र भेद है।

उत्तर – पुण्य – पाप को सर्वथा एक रूप कहना उपयुक्त नहीं है क्योंकि सोने

या लोहे की बेड़ी की तरह दोनों ही आत्मा की परतन्त्रता में कारण है तथापि इष्टफल और अनिष्ट फल के निमित्त से पुण्य और पाप में भेद है। जो इष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रिय विषय आदि का निवर्तक है, वह पुण्य है तथा जो अनिष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रियों के विषय आदि का कारण है वह पाप है। इस प्रकार पुण्यकर्म और पापकर्म में भेद है। इनमें शुभ योग पुण्यास्रव का कारण है और अशुभ योग पापास्रव का।

**शंका** – सम्यग्दृष्टि जीव के तो पुण्य तथा पाप ये दोनों ही हेय (त्वाज्य) हैं फिर वह पुण्य सम्पादन कैसे करता है?

**समाधान** – सम्यग्दृष्टि जीव भी निज शुद्ध आत्मा को ही भाता है। परन्तु जब चारित्रमोह के उदय से उस निज शुद्ध आत्मा की भावना में असमर्थ होता है, तब दोषरहित परमात्मा स्वरूप जो अर्हन्त-सिद्ध है तथा उनके आराधक जो आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं उनकी परमात्मा रूप पद की प्राप्ति के निमित्त और विषय तथा कषायों को दूर करने के लिए दान, पूजा आदि से अथवा गुणों की स्तुति आदि से परम भक्ति को करता है और भोगों की वाँछा आदि निदानों से रहित जो परिणाम है उससे कुटुंबियों के पलाल के समान निरच्छकपने से विशिष्ट पुण्य का आस्रव करता है, अर्थात् जैसे किसान जब चावलों की खेती करता है, तब उसका मुख्य उद्देश्य चावल उत्पन्न करने का रहता है और चावलों का जो पलाल (घास) उसमें उसकी वाँछा नहीं रहती है, तथापि उसको बहुत-सा पलाल मिल ही जाता है। इसी प्रकार मोक्ष को चाहने वाले जीवों की वाँछा बिना भी भक्ति करने से पुण्य का आस्रव होता है। और उस पुण्य से स्वर्ग में इन्द्र, लोकान्तिक देव आदि की विभूति को प्राप्त होकर स्वर्ग सम्बन्धी जो विमान तथा देव देवियों का परिवार है उसको जीर्ण तृण के समान गिनता हुआ पंच महाविदेहों में जाकर देखता है। क्या देखता है? ऐसा प्रश्न करो तो उत्तर यह है कि, वह यह समवसरण है, ये वही श्री वीतराग सर्वज्ञ भगवान हैं, ये वे ही भेद तथा अभेद रूप रत्नत्रय की आराधना करने वाले गणधरदेव आदि हैं, जो कि पहले सुने जाते थे, वे आज प्रत्यक्ष में देखे ऐसा मानकर अधिकता से धर्म में दृढ़ बुद्धि को करके चतुर्थ गुणस्थान के योग्य जो अपनी अविरत अवस्था है भाव उसको नहीं छोड़ता हुआ भोगों का सेवन होने पर भी धर्मध्यान से देव आयु के काल को पूर्णकर स्वर्ग से आकर तीर्थकर आदि पद को प्राप्त होता है और तीर्थकर आदि पद को प्राप्त होने पर

भी पूर्वजन्म में भावित की हुई जो विशिष्ट-भेद ज्ञान की वासना है उसके बल से मोह को नहीं करता है और मोह रहित होने से श्री जिनेन्द्र की दीक्षा को धारण कर पुण्य तथा पाप से रहित जो निज परमात्मा का ध्यान है उसके द्वारा मोक्ष को जाता है और जो मिथ्यादृष्टि है वह तो तीव्र निदान बन्ध के पुण्य से चक्रवर्ती, नारायण तथा रावण आदि प्रतिनारायणों के समान भोगों को प्राप्त होकर नरक को जाता है।

कुन्दकुन्द देव ने कहा भी है—

**जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।  
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसद्भावो॥ 9**

प्रवचनसार पृ.सं. 19

जब यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भाव से परिणत होता है, तब जबा कुसुम या तमालपुण्य के लाल या काले रंग रूप परिणत स्फटिक की भाँति परिणाम स्वभाव होता हुआ स्वयं शुभ या अशुभ होता है और जब यह शुद्ध अराग (वीतराग) भाव से परिणत होता है, शुद्ध होता है तब शुद्ध अराग वीतराग स्फटिक की भाँति परिणाम स्वभाव शुद्ध होता है उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध होता है।

इस प्रकार जीव के शुभत्व, अशुभत्व और शुद्धत्व सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह है कि वह परिणमन स्वभाव, कृतस्थ नहीं है।

**देवजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मिय सुसीलेसु।  
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा॥69॥**

पृ. 158

देव, यति और गुरु की पूजा में तथा दान में तथा सुशील में और उपवासादिका में आत्मा शुभोपयोगात्मक है।

**उवओगो जदि हि सुहो पुण्णं जीवस्सं संचय जादि।  
असुहो वा तध पावं तेसिमभावे ण चयमत्थि॥ 156॥**

पृ. 352

उपयोग यदि शुभ हो तो जीव पुण्य संचय को प्राप्त होता है और यदि अशुभ हो तो पाप संचय होता है उन दोनों के अभाव में संचय नहीं होता।

**जो जाणदि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।  
जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहोतस्स॥157॥**

जो अहन्तों, सिद्धों तथा अनगारों को जानता है और श्रद्धा करता है, और जीवों के प्रति अनुकम्पा युक्त है, उसका वह उपयोग शुभ है।

कुन्दकुन्द स्वामी के समयसार एवं प्रवचनसार के टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र ने तत्त्वार्थसार में पुण्यास्रव का कारण बताते हुये कहा है—

दया दानं तपः शीलं सत्यं शौचं दमः क्षमा।

वैयावृत्यं विनीतश्च जिनपूजार्जवं तथा॥ 25

सरागसंयमशैवं संयमासंयमस्तथा॥

भूतवृत्यनुकम्पा च सदेयास्रवहेतवः॥ 26॥

तत्त्वार्थ सार  
दया, दान, तप, शील, सत्य, शौच, इन्द्रिय दमन, क्षमा, वैयावृत्य, विनय, जिनपूजा, सरलता, सरागसंयम, संयमासंयम, भूतानुकम्पा और वृत्यनुकम्पा ये सातावेदनीय के आस्रव के हेतु हैं।

पापास्रव के कारणभूत अशुभ योग का स्वरूप कुन्दकुन्द देव ने प्रवचनसार में निम्न प्रकार से किया है—

विसयकसाओगाढो दुसुदिदुच्चितदुड्गोद्धिजुदो।

उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो॥158

जिसका उपयोग विषय कषाय में अवगाढ़ मान है, कुश्रुति, कुविचार और कुसंगति में लगा हुआ है, कषायों की तीव्रता में अथवा पापों में उद्यत है तथा उम्मार्ग में लगा हुआ है उसका वह उपयोग अशुभ है।

शुभोपयोग के अनेक भेद, प्रभेद होने से उनकी बंधने वाली प्रकृतियाँ भी अनेक हैं तथा अशुभोपयोग के भेद, प्रभेद अनेक होने के कारण उनके बंधने वाली प्रकृतियाँ भी अनेक हैं। गोम्हसार कर्मकाण्ड में पुण्य एवं पाप प्रकृतियों का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है—

### पुण्य प्रकृतियाँ

सादं तिण्णेवाउं उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।

देहा बंधनसंघादांगोवंगाई, वण्णचओ॥41

समचउरव्यज्जरिसहं उवधादूणगुरुछक्कसग्गमणं।

तसबारसइसद्वी वादालमभेददो सत्था॥42

गो. सार कर्म.

सातावेदनीय, तीन आयु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, पाँचबन्धन, पाँच संघात, तीन अंगोपांग, वर्णचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, वर्जर्षभनाराचसंहनन, उपधात बिना अगुरुलघुषट्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस आदि बारह ये अड़सठ प्रकृतियाँ भेद विवक्षा से हैं तथा अभेद विक्षा से पुण्य प्रकृतियाँ 42 ही हैं।

उपर्युक्त गाथा में कथित पुण्यप्रकृतियों में जो तीन आयु कही हैं वे तिर्यच, मनुष्य और देवायु हैं। वर्ण चतुष्क में— वर्ण, गंध रस और स्पर्श हैं, किन्तु यहाँ शुभरूप वर्णादि चतुष्क को ही ग्रहण करना। इनके भेद करने पर वर्ण 5, गंध 2, रस 5, और स्पर्श 8 इस प्रकार 20 भेद होते हैं सो यह कथन भेदविवक्षा से है, किन्तु अभेदविवक्षा में शुभ रूप वर्णादि चार ही ग्रहण के योग्य हैं। उपधात के बिना अगुरुलघुषट्क अर्थात् अगुरुलघु—परधात उच्छवास—आतप और उद्योत ये 5 प्रकृतियाँ हैं। त्रस आदि 12 प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं— त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थकर। भेदविवक्षा से तो 68 प्रकृतियाँ कहीं और अभेद विवक्षा से 42 प्रकृतियाँ कहीं सो इसका अभिप्राय यह है कि पाँच बन्धन और 5 सङ्घात, पाँच शरीरों के अविनाभावी हैं अतः उनकी पृथक् नहीं गिनने से 10 प्रकृतियाँ वे कम हो गईं। इस प्रकार इन 26 प्रकृतियों को कम कर देने पर अभेदविवक्षा में 42 ही प्रकृतियाँ रहती हैं एवं भेद विवक्षा से इन 26 का भी कथन होने से 68 प्रकृतियाँ हो जाती हैं। यहाँ पृथक्—पृथक् रूप से नाम गिनाकर पुण्य (प्रशस्त) प्रकृतियों का कथन किया गया है। इसी बात को एक संक्षिप्त सूत्र द्वारा तत्त्वार्थ सूत्र में उमास्वामी आचार्य ने कहा है, ‘‘सातावेदनीय, शुभआयु, नामकर्म की शुभ प्रकृतियाँ तथा शुभगोत्र (उच्चगोत्र) ये पुण्यरूप हैं।’’

### पाप प्रकृतियाँ

घादीणीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी-  
संठाणसंहदीणं चदुपणगं च वण्णचओ॥ (43)

उवधादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्य सत्थाहु।

बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुर सीदिदेर॥(44)

(गो. सार. कर्म.)

घातिया कर्म की 47 प्रकृति तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यचगति - तिर्यचगत्यानुपूर्वी, जाति 4, संस्थान 5, संहनन 5, (अशुभ) वर्णचतुष्क, उपधात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि 10 ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ हैं। भेद विवक्षा से बन्ध रूप 98 प्रकृतियाँ एवं उदयरूप 100 प्रकृतियाँ हैं। अभेदविवक्षा से वर्णादि कि 16 प्रकृति घटाने पर बन्धन रूप 82 और उदयरूप 84 प्रकृतियाँ हैं।

यहाँ अप्रशस्त प्रकृतियों में घातिया कर्मों की प्रकृतियाँ कहीं गईं सो घातियाँ कर्म तो अप्रशस्तरूप ही हैं। उनकी 47 प्रकृतियाँ-ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9, मोहनीय 28, और अन्तराय की 5 हैं तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यज्यगति, तिर्यज्यगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि 4, जाति, समचतुरस्संस्थान विना न्यग्रोधपरिमण्डलादि 5 संस्थान, वज्रषभनाराचबिना वज्रनाराचादिक 5 संहनन, अशुभ वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, उपधात, अप्रशस्तविहायोगति स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःखर अनादेय और अयशस्कीर्ति इस प्रकार वर्णादि की 16 कम करने पर उदयापेक्षा 84 प्रकृतियाँ तथा घातियाकर्म की 47 में से सम्यग्मित्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति कम कर देने से बन्धापेक्षा 82 प्रकृतियाँ अप्रशस्तरूप कहीं हैं। भेद विवक्षा से वर्णादि की 16 मिलने पर बन्धापेक्षा 98 एवं उदयापेक्षा सम्यग्मित्यात्व व सम्यक्त्वप्रकृति मिलने से 100 प्रकृतियाँ पाप रूप (अप्रशस्त) कहीं हैं।

### पुण्य के फल

पुनात्यात्मानं पूयतेनेनेति वा पुण्यम्। सर्वार्थसिद्धि

जो आत्माको पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होती है वह पुण्य है। ध्वल-सिद्धांत शास्त्र में वीरसेन स्वामी ने कहा है-

काणि पुण्य फलानि?

पुण्य के फल कौन से हैं?

तित्थयर-गणहर-रिसि-चक्कावटि-८-

बलदेव-वासुदेव-सूर-विज्जाहरिद्धीओ।

तीर्थकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरों की

ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं।

सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया गया पुण्य संसार का कारण कभी नहीं होता यह नियम है। यदि सम्यग्दृष्टि पुरुष के द्वारा किये हुए पुण्य में निदान न किया जाय तो वह पुण्य नियम से मोक्ष का ही कारण होता है।

लद्धं जइ चरम तणु चिरकय पुण्णेण सिज्जाए पियमा।

पाविय केवल णाणं जह खाइय संजमं सुद्धं॥423

यदि वह जीव अपने विरकाल के संचित किये हुये पुण्य कर्म के उदय से चरम शरीरी हुआ तो वह जीव यथाख्यात नाम के शुद्ध चारित्र को धारण कर तथा केवलज्ञान को पाकर नियम से सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

तम्हासम्मादिद्वि पुण्णं मोक्खस्स कारणं हवई।

इय णाऊण गिहत्थो पुण्णं चायरउ जत्तेण॥424

उपरोक्त कथनों से सिद्ध होता है कि सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का कारण होता है, यही समझ कर गृहस्थों की यत्नपूर्वक पुण्य का उपार्जन करते रहना चाहिए।

उवसामगो व खवगो वा।

सो सूहुमसांपराओ जहखादेषूणओ किंचि॥474

जिस उपशम श्रेणी वाले अथवा क्षपक श्रेणीवाले जीव के अणुमात्र लोभ-सूक्ष्म कष्टि को प्राप्त लोभकषाय के उदय का अनुभव होता है उसको सूक्ष्मसांपराय संयमी कहते हैं। इसके परिणाम यथाख्यात चारित्र वाले जीव के परिणामों से कुछ ही कम होते हैं, क्योंकि यह संयम दशवें गुणस्थान में होता है और यथाख्यात संयम ग्यारहवें से शुरू होता है।

जिसके अन्दर आध्यात्मिकता प्रकट हो जाती है वह स्वयं हर दृष्टि से पवित्र बन जाता है, उसके वचन और व्यवहार भी पवित्र हो जाते हैं, वह हर जीव की मंगल कामना करता है, भले वह हर जीव के मंगल करने में असमर्थ ही क्यों न हो।

- आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

## परिच्छेद - 9

### सुभावना

भाव ही प्राण शक्ति है, भाव विद्युत के समान एवं चुम्बक के समान शक्तिशाली है। भाव से रहित शिव (जीव) शव (जड़वत्) हो जाता है।

भावना देने से औषधि गुणकारी होती है, अग्नि रूपी भावना से स्वर्ण पाषाण शुद्ध स्वर्ण हो जाता है। उत्तम भावना से ही अशुद्ध जीव भावित होकर शुद्ध हो जाता है जिससे वह सिद्ध बन जाता है।

अशुद्ध भावसे नरक, शुभ भावसे स्वर्ग, शुद्ध भावना से जीव सिद्ध बन जाता है। कुभावना जीव में शत्रु है, विषके समान अहितकारी है, शुभ भावना मित्र है, कल्पवृक्ष के समान फलदायी है।

कुभावना सहित आत्मा स्वयं-स्वयं का शत्रु है, उत्तम भावना सहित जीव स्वयं-स्वयं का मित्र है।

स्वयं जब स्वयं को हितकर मार्ग में प्रवृत्त करता है, उस समय में स्वयं-स्वयं का गुरु है। कुपथगामिनी आत्मा स्वयं के लिए स्वयं यम है।

जो आत्मा-विजयी है वह जगत्-विजयी है और वह स्वयं के लिये मित्र है। जो स्वयं के लिए स्वयं शत्रु है वह विश्वामित्र (विश्व+अमित्र= विश्व के लिये शत्रु) है। जो आत्म विजयी है, वह सुख का भोग करता है, पराजय दुःखदायक है।

#### मैत्री भावना

सम वयस्क में, क समग्रुण में मित्रता होती है, सर्व जीव जीव-जाति की अपेक्षा समान होने के कारण सर्व जीव में मित्रता है। मित्रता भावना से सर्व जीव प्रति समभाव एवं मित्रता भाव पोषण होता है।

#### प्रमोद भावना

गुण सदा पूज्य होता है, गुण में आदर भाव होता है, गुण सहित जो होता है वह गुणी है, इसीलिये गुण में जो आदरभाव होता है, वह श्रेष्ठ प्रमोद भाव ह।

#### करुणा भावना

सर्व जीव सुख को चाहते हैं, दुःख से कातरता को प्राप्त होते हैं। इसीलिए दूसरों

के दुःख विनाश के लिए जो कृपा भाव किया जाता है उसको करुणा भाव कहते हैं।

#### माध्यस्थ भाव

संसार में अनेक जीव हैं, अनेक कर्म हैं। इसीलिए विभिन्न जीवों में विभिन्न वैचित्र्य मय भाव पाये जाते हैं। उस विषम भाव के प्रति समभाव रखना सर्वश्रेष्ठ माध्यस्थ भाव है।

॥ ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

### अन्यासप्रश्न (परि. 9)

1. भाव की महिमा का वर्णन करो।
2. स्वयं-स्वयं का शत्रु एवं मित्र कौन है?
3. मैत्री भावना किसे कहते हैं?
4. प्रमोद भावना किसे कहते हैं?
5. करुण भावना में क्या भाव होता है?
6. माध्यस्थ भाव किसे कहते हैं?

## परिच्छेद - 10

### आदि ब्रह्मा-ऋषभदेव

इस हुण्डावसर्पिणी काल के प्रथम धर्म प्रवर्तक आदिनाथ तीर्थकर हुए। उनके दूसरे-दूसरे नाम वृषभनाथ या वृषभदेव, आदि ब्रह्मा या पुरुदेव भी थे। वे सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर आशाढ़ वदी द्वितीया को भारत की प्रसिद्ध नगरी अयोध्या के राजा नाभिराय की रानी मरुदेवी के गर्भ में आये। इसे ही गर्भकल्याणक कहते हैं। गर्भकाल पूर्ण होने के बाद चैत्र कृष्णा नवमी तिथि को उत्तराशाढ़ नक्षत्र में उनका जन्म हुआ इसे ही जन्म कल्याणक कहते हैं। इनका वंश इक्ष्वाकु वंश एवं क्षत्रिय वर्ण (जाति) था। उनका चिन्ह (लांछन) वृषभ (बैल) था। इनकी पूर्ण आयु 84 लाख वर्ष पूर्व की थी। इनका कुमार काल अर्थात् बाल्यकाल 20 लाख वर्ष पूर्व का था। उनकी शरीर की लम्बाई (उत्सेध) 500 धनुष की थी। उनके शरीर का वर्ण शुद्ध सुवर्ण के समान था। उन्होंने 63 लाख वर्ष पूर्व तक राज्य शासन

किया अर्थात् राजा रहे। राज्यावस्था में आदिनाथ ने ब्राह्मी को अक्षरलिपि, सुन्दरी को अंकलिपि, भरत, बाहुबली को राजनीति, युद्ध, कलादि की शिक्षा दी थी। एक दिन भरी राज्यसभा में नीलांजना नाम की असरा का मनोहरी नृत्य हुआ। नृत्य करते-करते उसका मरण हुआ। नीलांजना के स्थान पर इन्द्र ने दूसरी देवी को भेज दिया। इस विषय का अन्य किसी को पता नहीं चला। परन्तु आदिनाथ भगवान् जन्म से ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान के धारी होने के कारण इस विषय को जानकर विरक्त हो गये एवम् वे विचार करने लगे कि मेरा जीवन भी इस प्रकार क्षण-भंगुर है और इस क्षण-भंगुर जीवन में आसक्त होना ठीक नहीं। इस जीवन में ऐसे धर्मकार्य करने चाहिए जिससे इस जन्म के बाद पुनः जन्म-मरण न हो; जिससे संसार के दुःख भोगने न पड़ें। उनकी वैराग्य भावना की सराहना करने के लिए स्वर्ग से बालब्रह्मचारी लौकान्तिक देव आये एवम् दीक्षा लेने की अनुमोदना की। आदिनाथ ने सिद्धार्थ नामक वन में जाकर षष्ठोपवास (2 दिन का उपवास) लेकर अपराह्न काल में 4000 राजाओं के साथ चैत्र-कृष्णा नवमी तिथि तथा उत्तराषाढ़ नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की। इसे ही दीक्षा कल्याणक कहते हैं। वे एक हजार वर्ष तक मुनि अवस्था में रहकर केवलज्ञान प्राप्त करने के लिए 6 अन्तर्रंग, 6 बहिरंग तपश्चरण करने लगे। इसे ही छद्मस्थ काल या आध्यात्मिक साधना काल कहते हैं। इन कठोर तपश्चरण के कारण पुरिमताल वन में न्योग्रोध (अशोक) वृक्ष के नीचे फाल्युन कृष्णा ग्यारस तिथि उत्तराषाढ़ नक्षत्र के पूर्वाह्न में इन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय रूपी धाति कर्म के क्षय से उन्हें केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्तवीर्य प्रकट हुआ। इसे ही अनन्त चतुष्टय कहते हैं। इस अवस्था को केवली अवस्था कहते हैं। केवलज्ञान होने के बाद इन्द्र ने आकर समोवशरण (विश्व धर्म सभा) की रचना की एवं केवलज्ञान कल्याणक मनाया। भगवान् आदिनाथ तीर्थकर देव ने एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक दिव्यध्वनि के माध्यम से धर्म का प्रचार-प्रसार किया। इनका एक विशाल धर्म संघ था। उस चतुर्विध धर्म संघ में ब्राह्मी आदि तीन लाखपचास हजार आर्यिकाएँ, वृषभसेन आदि चौरासी गणधर, चौरासी हजार ऋषि, जिनमें चार हजार सात सौ पचास पूर्वधर, चार हजार एक सौ पचास शिक्षक, नौ हजार अवधिज्ञानी, बीस हजार केवली, बीस हजार छह सौ विक्रियाधारी, बारह हजार सात सौ पचास विपुलमति, बारह हजार सात सौ पचास वादी मुनि रहते थे। विश्व में सुख, शांति की स्थापना करते हुए 14 दिन की

योग निवृत्ति करके 10 हजार केवलियों के साथ कैलाश पर्वत से उत्तराषाढ़ नक्षत्र में पूर्वाह्न काल में शरीर सहित शेष बचे हुए अघाती कर्मों को नष्ट करके एक समय में सिद्धशिला में जाकर विराजमान हो गए। इसे मोक्षकल्याणक कहते हैं। देवों ने उत्सह पूर्वक मोक्षकल्याणक मनाया और अग्नि कुमार देव ने स्वमुकुट से अग्नि प्रज्वलित करके आदिनाथ भगवान के दिव्य शरीर का अग्नि संस्कार किया। कुछ आचार्य मानते हैं बचे हुए नख और केश का संस्कार देव लोग करते हैं।

हिन्दु धर्म के प्राचीन साहित्य—वेद में भी ऋषभदेव का वर्णन पाया जाता है। इतना ही नहीं भागवत पुराण में ऋषभदेव का सांगोपांग वर्णन पाया जाता है। इसके साथ—साथ मार्कण्डेय पुराण, कूर्म पुराण, अग्नि पुराण, वायु व महापुराण—वराह पुराण, लिंग पुराण, विष्णु पुराण, ऋषेव आदि में ऋषभदेव के बारे में वर्णन पाया जाता है। विशेष जानकारी के लिए लेखक द्वारा लिखित “युगनिर्माता—ऋषभदेव” नामक पुस्तक का अवलोकन तथा अध्ययन करें।

आदिनाथ भगवान् के यक्ष गोवदन (गोमुख) और यक्षिणी माँ चक्रेश्वरी थीं। इनके समोवशरण का विस्तार 12 योजन था।

### आदिनाथ के विभिन्न रूप

#### 1. जगत् के कर्ता—हर्ता—

अथापश्चदुच्चैर्ज्वलत्पीढ़ मूर्छिन स्थितं देवदेवं चतुर्वक्त्रशोभम्।

सुरेन्द्रनरेन्द्रमुनीन्द्रैश्च बन्ध जगतसृष्टि संहारयोर्हेतुमादाम् ॥12॥

जो ऊँची और देवीप्रमाण पीठिका के ऊपर विराजमान थे, देवों के भी देव थे, चारों ओर दिखने वाले चारमुखों की शोभा से सहित थे; सुरेन्द्र, नरेन्द्र और मुनीन्द्रों के द्वारा वंदनीय थे, जगत की सृष्टि (मोक्ष मार्ग रूपी सृष्टि को उत्पन्न करने वाले) और संहार कर्ता (पापरूपी सृष्टि को संहार करने वाले) के मुख्य कारण थे।

#### 2. स्वयंभू—

स्वयंभुवे नमस्तु भ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि।

स्वात्मनैव तथोद्भुत वृतयेऽचिन्त्य वृत्तये ॥66॥

आदिपुराण पर्व-25

हे नाथ! आप अपने आत्मा में ही आत्मा के द्वारा, अपने आत्मा को उत्पन्न कर प्रकट हुए हैं, इसलिए आप स्वयंभू अर्थात् आप उत्पन्न हुए कहलाते हैं। इसके

सिवाय आपका माहात्म्य भी अचिन्त्य है, अतः आपको नमस्कार हो।

### 3. विश्व के स्वामी –

नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्ते नमोऽस्तु ते।

विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतां वर॥६७॥

आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो और आप लक्ष्मी के भर्ता हैं इसलिए आपको नमस्कार हो; आप विद्वानों में श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो और वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।

### 4. अनन्तजित् –

ध्यानद्रुष्टं निर्भिन्नघनघातिमहातरुः।

अनन्त भव सन्तान जयादासीदनन्तजित्॥६९॥

आपने ध्यानरूपी कुठार से अतिशय मजबूत घातियाँ कर्म रूपी बड़े भारी वृक्ष को काट डाला है तथा अनन्त संसार की सन्तति को भी आपने जीत लिया है इसलिये आप अनन्तजित् कहलाते हैं।

### 5. मृत्युंजय –

त्रैलोक्यनिर्जयावाप्तदुर्धर्मतिदुर्जयम्।

मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन मृत्युञ्जयो भवान्॥७०॥

हे जिनेन्द्र देव! तीनों लोकों को जीत लेने से जिसे भारी अहंकार उत्पन्न हुआ है और जो अत्यन्त दुर्जय है ऐसे मृत्युराज को भी आपने जीत लिया है, इसलिए आप मृत्युञ्जय कहलाते हैं।

### 6. त्रिपुरारि –

विद्युताशेष संसार बन्धनो भव्य बान्धवः।

त्रिपुरारिस्त्वमीशोऽसि जन्ममृत्युजरान्तकृत्॥७१॥

आपने संसाररूपी समस्त बन्धन नष्ट कर दिये हैं, आप भव्य जीवों के बन्धु हैं, आप जन्म, मरण और बुढ़ापा तीनों का नाश करने वाले हैं, इसलिए आप त्रिपुरारि कहलाते हैं।

### 7. त्रिनेत्र –

त्रिकालविषयाशेषतत्त्वभेदात् त्रिधोत्थियम्।

केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशिता॥७२॥

हे ईश्वर ! जो तीनों काल विषयक समस्त पदार्थों को जानने के कारण तीन प्रकार से उत्पन्न हुआ कहलाता है, ऐसे केवलज्ञान नामक नेत्र को आप धारण करते हैं इसलिये आप ही त्रिनेत्र कहलाते हैं।

### 8. अन्धाकान्तक –

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुर मर्दनात्।

अर्धते नारयो यस्मादर्ध नारीश्वरोऽस्यतः॥७३॥

आपने मोहरूपी अन्धासुर को नष्ट कर दिया है, इसलिए विद्वान् लोग आपको ही अन्धकान्तक कहते हैं।

**9. अर्धनारीश्वर –** 8 कर्म रूपी शत्रुओं में से आप आधे अर्थात् चार घातियाँ कर्मरूपी शत्रुओं के ईश्वर नहीं हैं इसलिए आप अर्धनारीश्वर (अर्ध+न+अरि+ईश्वर = अर्धनारीश्वर) कहलाते हैं।

### 10. शिव –

शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारिहरो हरः।

शंकरः कृतशं लोके शंभवस्त्वं भवन्सुखे॥७४॥

आप शिव पद अर्थात् मोक्षस्थान में निवास करते हैं इसलिए शिव कहलाते हैं।

**11. हर –** पाप रूपी शत्रुओं का नाश करने वाले हैं इसलिए हर कहलाते हैं।

**12. शङ्कर –** लोक में शान्ति करने वाले हैं इसलिए शङ्कर कहलाते हैं।

**13. संभव –** सुख से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए सम्भव कहलाते हैं।

### 14. वृषभ –

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरुगुणोदयैः।

नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः॥७५॥

जगत् में श्रेष्ठ हैं, इसलिए 'वृषभ' कहलाते हैं।

**15. पुरु –** अनेक उत्तम गुणों का उदय होने से पुरु कहलाते हैं।

**16. नाभेय –** नाभिराज से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए नाभेय कहलाते हैं।

**17. इक्ष्वाकुकुलनन्दन –** इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न हुए हैं, इसलिए इक्ष्वाकुकुलनन्दन कहलाते हैं।

**१८. सद्योजात –**

स्वर्गावतरणेतुभ्यं सद्योजातात्मने नमः।  
जन्माभिषेकवामाय वामदेव नमोऽस्तु ते॥७८॥

हे नाथ! आप स्वर्गावतरण के समय सद्योजात अर्थात् शीघ्र ही उत्पन्न होने वाले कहलाते थे, इसलिए आपको नमस्कार हो।

**१९. वामदेव –** आप जन्माभिषेक के समय बहुत सुन्दर जान पड़ते थे, इसलिए हे वामदेव! आपको नमस्कार हो।

**२०. ईश्वर –**

सन्निष्ठकान्तावपोराय परं प्रशममीयुषे।  
केवलज्ञानसंसिद्धवीशानाय नमोऽस्तु ते॥७९॥

दीक्षा कल्याण के समय आप परम शान्ति को प्राप्त हुए और केवलज्ञान के प्राप्त होने पर परम पद को प्राप्त हुए तथा ईश्वर कहलाये। इसलिए आपको नमस्कार हो।

**२१. विभु –**

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।  
विश्वव्यापी विधिर्वेद्याः शाश्वतो विश्वतोमुखः॥१०२॥

समस्त पदार्थों को देखने वाले हैं, इसलिए विश्व दृश्वा हैं। केवलज्ञान की अपेक्षा सब जगह व्याप्त हैं अथवा सब जीवों को संसार से पार कराने में समर्थ हैं अथवा परमोक्तृष्ट विभूति से सहित हैं, इसलिए विभु हैं।

**२२. धाता –** संसारी जीवों का उद्धार कर उन्हें मोक्षस्थान को धारण करानेवाले हैं, पहुँचाने वाले हैं अथवा मोक्षमार्ग की सृष्टि करने वाले हैं, इसलिए धाता कहलाते हैं।

**२३. विश्वेश –** समस्त जगत् के ईश्वर हैं इसलिए विश्वेश कहलाते हैं।

**२४. विश्वलोचन –** सब पदार्थों को देखने वाले हैं अथवा सबका हित सन्मार्ग का उपदेश देने के कारण सब जीवों के नेत्रों के समान हैं, इसलिए विश्वलोचन कहे जाते हैं।

**२५. विश्वव्यापी –** संसार के समस्त पदार्थों को जानने के कारण आपका

ज्ञान सब जगह व्याप्त है, इसलिए आप विश्वव्यापी कहलाते हैं।

**२६. विधि –** आप समीचीन मोक्षमार्ग का विधान करने से विधि कहलाते हैं।

**२७. वेधा –** धर्मरूप जगत् की सृष्टि करने वाले हैं, इसलिए वेधा कहलाते हैं।

**२८. शाश्वत –** सदा विद्यमान रहते हैं, इसलिए शाश्वत कहलाते हैं।

**२९. विश्वतोमुख –** समवशरण में आपका मुख चारों दिशाओं में दिखता है अतः आप विश्वतोमुख अथवा जल की तरह पाप रूपी पंक को दूर करने वाले स्वच्छ तथा तृष्णा को नष्ट करने वाले हैं, इसलिए आप विश्वतोमुख कहे जाते हैं।

**३०. विश्वकर्मा –**

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः।

विश्वदृग्विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः॥१०३॥

आपने कर्मभूमि की व्यवस्था करते समय लोगों की आजीविका के लिए असि, मसि आदि सभी कर्मों-कार्यों का उपदेश दिया था, इसलिए आप विश्वकर्मा कहलाते हैं।

**३१. जगज्ज्येष्ठ –** आप जगत् में सबसे ज्येष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ हैं, इसलिए जगज्ज्येष्ठ कहे जाते हैं।

**३२. विश्वमूर्ति –** आप अत्यन्त गुणमय हैं अथवा समस्त पदार्थों के आकार आपके ज्ञान में प्रतिफलित हो रहे हैं, इसलिए आप विश्वमूर्ति हैं।

**३३. जिनेश्वर –** कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले सम्यग्दृष्टि आदि जीवों के आप ईश्वर हैं, इसलिए जिनेश्वर कहलाते हैं।

**३४. विश्वभूतेश –** समस्त प्राणियों के ईश्वर हैं, इसलिए विश्वभूतेश कहे जाते हैं।

**३५. विश्वदृक् –** आप संसार के समस्त पदार्थों का सामान्यवलोकन करते हैं, इसलिए विश्वदृक् कहलाते हैं।

**३६. विश्वज्योति –** आपकी केवलज्ञानरूपी ज्योति अखिल संसार में व्याप्त हैं, इसलिए आप विश्वज्योति कहलाते हैं।

**३७. अनीश्वर –** आप सबके स्वामी हैं किन्तु आपका कोई स्वामी नहीं है, इसलिये आप अनीश्वर कहे जाते हैं।

38. युगादि पुरुष-

युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः।  
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः॥105॥

आप इस कर्मभूमि रूपी युग के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए थे, इसलिये आदि पुरुष कहे जाते हैं।

39. ब्रह्मा— केवलज्ञान आदि गुण आपमें ब्रह्मण अर्थात् ब्रुद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, इसलिये आप ब्रह्मा कहे जाते हैं।

40. पंच ब्रह्ममय— आप पंच परमेष्ठी स्वरूप हैं, इसलिये पंच ब्रह्ममय कहलाते हैं।

41. शिव— शिव अर्थात् मोक्ष अथवा आनन्द रूप होने से शिव कहे जाते हैं।

42. पर— आप सब जीवों का पालन अथवा समस्त ज्ञान आदि गुणों को पूर्ण करने वाले हैं, इसलिये पर कहलाते हैं।

43. परतर— संसार में सबसे श्रेष्ठ हैं, इसलिए परतर कहलाते हैं।

44. सूक्ष्म— इन्द्रियों के द्वारा आपका आकार नहीं जाना जा सकता अथवा नामकर्म का क्षय हो जाने से आपमें बहुत शीघ्र सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होने वाला है, इसलिये आपको सूक्ष्म कहते हैं।

45. परमेष्ठी— परमपद में स्थित हैं, इसलिये परमेष्ठी कहलाते हैं।

46. सनातन— सदा एक से ही विद्यमान रहते हैं, इसलिये सनातन कहे जाते हैं।

47. सहस्रशीर्ष— अनन्त सुखी होने से सहस्रशीर्ष कहलाते हैं।

48. क्षेत्रज्ञ— क्षेत्र अर्थात् आत्मा को जानने से क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं।

49. सहस्राक्ष— अनन्त पदार्थों को जानते हैं, इसलिए सहस्राक्ष कहे जाते हैं।

50. सहस्रपात— अनन्त बल के धारक हैं, इसलिये सहस्रपात कहलाते हैं।

51. भूतभव्यभवद्वर्ता— भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के स्वामी हैं इसलिये भूतभव्यभवद्वर्ता कहे जाते हैं।

52. विश्वविद्यामहेश्वर— समस्त विद्याओं के प्रधान स्वामी हैं, इसलिए विश्वविद्यामहेश्वर कहलाते हैं।

53. बुद्ध-

बुद्धो दशबलः शाक्यः षड्भिज्ञस्तथागतः।  
समन्तभद्रः सुगतः श्रीघनो भूतकोटिदिक्॥110॥

— जिन सहस्रनाम

हे बोधि के निधान! आप केवल ज्ञान रूप बुद्धि के धारण करने वाले हैं, इसलिए बुद्ध कहलाते हैं अथवा सर्व जगत को जानते हैं, इसलिए भी बुद्ध कहलाते हैं।

54. दशबल— आपके क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दश धर्म बल अर्थात् सामर्थ्य रूप हैं, इसलिए आप दशबल कहलाते हैं अथवा “द” शब्द दया और बोधि का वाचक है, इन दोनों के द्वारा आप सबल अर्थात् सामर्थ्यवान् हैं इसलिए भी योगीजन आपको दशबल कहते हैं। श्लेषार्थ की अपेक्षा ‘स’ और ‘श’ में बोध नहीं होता। बौद्धमत में बुद्ध के दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान, शान्ति, सामर्थ्य, उपाय, प्राणिधान और ज्ञान ये दशबल माने गये हैं।

55. शाक्य— जो सर्वशक्ति वाले कार्यों के करने में समर्थ हो, उसे शक कहते हैं, इस निरुक्ति के अनुसार तीर्थकरों के पिता शक कहे जाते हैं। आप उनके पुत्र हैं इसलिए शाक्य कहलाते हैं अथवा ‘श’ अर्थात् सुख और अक यानी ज्ञान को धारण करने से भी आप शक्य कहलाते हैं। बौद्धमत में बुद्ध को शक राजा का पुत्र माना जाता है।

56. षड्भिज्ञ— जीवादि छह द्रव्यों को उनके अनन्त गुणों और पर्यायों के साथ भलीभांति जानने से आप षड्भिज्ञ कहलाते हैं। बुद्ध के दिव्य चक्षु, दिव्य श्रोत, पूर्वभवस्मरण, परिचितज्ञान, आस्रवक्षय और ऋद्धि ये छह अभिज्ञा मानी जाती हैं, इसलिए उन्हें षड्भिज्ञ कहते हैं।

57. तथागत— आपने वस्तु स्वरूप को तथा कहिए यथार्थ, गत अर्थात् जान लिया है इसलिए आप तथागत कहलाते हैं।

58. समन्तभद्र— आप समन्तात् अर्थात् सब ओर से भद्र हैं, जगत् के कल्याण कर्ता हैं अथवा स्वभाव अत्यन्त भद्र है, इसलिए आप समन्तभद्र कहलाते हैं।

59. सुगत— सुन्दर गत अर्थात् गमन करने से अथवा सुन्दरगत अर्थात् केवलज्ञान धारण करने से आप सुगत कहलाते हैं अथवा सुन्दर और आगे गमन करने वाली ‘ता’ कहिए लक्ष्मी आपके पास पायी जाती है, इसलिए भी आप सुगत

कहलाते हैं।

**60. श्रीघन-** श्री अर्थात् रत्न सुवर्णादि रूप लक्ष्मी को वर्षने के लिए आप घन के समान हैं क्योंकि आपके स्वर्गावतार के पूर्व से ही भूतल पर रत्न सुवर्ण की वर्षा होने लगती है। इसलिए आप श्रीघन कहलाते हैं अथवा केवलज्ञान रूप लक्ष्मी से आप घनीभूत निर्वृत हैं, अखण्ड ज्ञान के पिण्ड हैं।

**61. भूतकोटिदिक्-** भूत अर्थात् प्राणियों की कोटि कहिए, अनन्त संख्या का उपदेश देने के कारण आप भूतकोटिदिक् कहलाते हैं। आपके मतानुसार प्राणियों की संख्या अनन्त है, निरन्तर मोक्ष को जाने पर भी उनका कभी अन्त नहीं आता अथवा प्राणियों के कोटि-कोटि पूर्व और उत्तर भवों को आप जानते हैं और उनका उपदेश देते हैं अथवा प्राणियों को जो मिथ्या उपदेश के द्वारा कोटियन्ति कहिए, आकुल व्याकुल करते हैं, ऐसे जैमिनि, कपिल, कणाद आदि को भी आप सन्मार्ग का उपदेश देते हैं, अतः भूतकोटिदिक् कहलाते हैं अथवा जीवों के कोटि अर्थात् ज्ञानादि गुणों की अतिशय वृद्धि का उपदेश देते हैं अथवा अनन्त प्राणियों के आप विश्राम स्थानभूत हैं, उनके आश्रयदाता हैं, इसलिए भी आपका यह नाम सार्थक है।

## 62. सिद्धार्थ-

सिद्धार्थो मारजिच्छास्ताक्षणिकैक सुलक्षण।

बोधिसत्त्वो निर्विकल्प दर्शनोऽद्वयवाद्यपि॥111॥

जिन सहस्रनाम

आपको अर्थ अर्थात् चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो चुके हैं; अतः आप सिद्धार्थ हैं अथवा सिद्ध अवस्था को प्राप्त करना ही आपका अर्थ कहिए, प्रयोजन है अथवा जीव-अजीव आदि नव पदार्थ आपके द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिये आप सिद्धार्थ कहलाते हैं अथवा मोक्ष का कारण भूत अर्थ कहिए रत्नत्रय आपको सिद्ध हुआ है, इसलिये भी आपका नाम सार्थक है।

**63. मारजित-** मार अर्थात् काम विकार के जीत लेने से आप मारजित कहलाते हैं अथवा 'मा' अर्थात् लक्ष्मी जिनके समीप रहती है ऐसे इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्रादि को मार कहते हैं, उन्हें अपने दिव्य उपदेश के द्वारा जीत लिया है। बुद्ध ने स्कन्धमार, क्लेशमार, मृत्युमार और देव-पुत्रमार इन चारों मारों को जीता था इसलिए उन्हें मारजित कहते हैं।

**64. शास्ता-** सत्य धर्म का उपदेश देने के कारण आप शास्ता कहलाते हैं।

**65. क्षणिकैकसुलक्षण-** सभी पदार्थ क्षणिक हैं अर्थात् प्रति समय उत्पाद, व्यय और धौव्य रूप हैं, एक रूप स्थायी नहीं है, इस प्रकार का एक अर्थात् अद्वितीय सुन्दर सर्वज्ञता का प्रतिपादक लक्षण आपमें पाया जाता है, अतः आप क्षणिकैकसुलक्षण कहलाते हैं।

**66. बोधिसत्त्व-** रत्नत्रय की प्राप्ति को बोधि कहते हैं, इस बोधि का सत्य अर्थात् शक्ति रूप से अस्तित्व सर्व प्राणियों में पाया जाता है, इस प्रकार का उपदेश देने के कारण आप बोधिसत्त्व कहलाते हैं अथवा बोधिरूप सत्य अर्थात् बल आप में पाया जाता है।

**67. निर्विकल्पदर्शन-** आपने दर्शन को सत्ता मात्र का ग्राहक और निर्विकल्प अर्थात् विकल्प शून्य प्रतिपादन किया है, अतः आप निर्विकल्प दर्शन कहलाते हैं अथवा आपने मतान्तर रूप अन्य दर्शनों को निर्विकल्प अर्थात् विचार शून्य प्रतिपादन किया है क्योंकि उनका कथन प्रमाण से बाधित है।

**68. अद्वयवादी-** एक-अनेक, नित्य-अनित्य, सत्-असत् आदि द्वैतों को द्वय कहते हैं, आपने इन सबको अप्रमाणित कहा है, अतः आप अद्वयवादी कहलाते हैं अथवा निश्चयनय के अभिप्राय से आत्मा और कर्मरूप द्वैत नहीं हैं, ऐसा आपने कथन किया है इसलिए आपको अद्वयवादी कहते हैं।

## 69. योग-

योगो वैशेषिकस्तुच्छाभावाभित्पद् पदार्थ दृक्।

नैयायिकः षोडशार्थवादि पंचार्थ वर्णकः॥114॥

हे भगवन्! आपमें ध्यान रूप योग पाया जाता है, अतः आप योग हैं।

**70. वैशेषिक-** इन्द्रिजन्य ज्ञान को सामान्य और अतीन्द्रिय ज्ञान को विशेष कहते हैं। आप अतीन्द्रिय केवलज्ञान के धारी हैं, अतः वैशेषिक कहलाते हैं।

**71. तुच्छाभावभित्-** वैशेषिकों ने अभाव को भवान्तर स्वभावी न मानकर तुच्छ अर्थात् शून्य रूप माना है परन्तु आपने उसका खण्डन करके उसे भवान्तर स्वभावी अर्थात् अन्य पदार्थ के सद्भाव स्वरूप सिद्ध किया है, अतः आप तुच्छाभावभित् कहलाते हैं।

**72. षट् घदार्थ दृक्**— वैशेषिकों ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय नामक छह पदार्थों को भावात्मक माना हैं पर आपने उनका सबल युक्तियों से खण्डन कर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह पदार्थ का उपदेश दिया है, अतः आप षट् पदार्थों दृक् कहलाते हैं।

**73. नैयायिक**— जिसके द्वारा पदार्थ ठीक-ठाक जाने जाते हैं उसे न्याय कहते हैं, आप स्याद्वाद न्याय के प्रयोक्ता है, अतः नैयायिक कहलाते हैं।

**74. षोडशार्थवादी**— नैयायिक मतवाले प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिन्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान इन सोलह पदार्थों को मानने के कारण षोडशार्थवादी कहलाते हैं परन्तु आपने बताया कि दूसरों को छल, जाति आदि के द्वारा वचन जाल में फँसाकर जीतने का नाम न्याय नहीं है और न ही संशय, छल, वितण्डा, जाति आदि से पदार्थपना बनता है। इसके विपरीत आपने दर्शन विशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्षणज्ञानोपयोग, अभीक्षण संवेग, शक्तित्स्याग, शक्तिस्तप, साधु समाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हदभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्ग प्रभावना और प्रवचन वत्सलत्व ये तीर्थकर प्रकृति के उपार्जन कराने के कारण प्रयोजनभूत 16 पदार्थों का उपदेश दिया है, अतः आप ही सच्चे षोडशार्थवादी हैं।

**75. पंचार्थवर्णक**— आपने पंच अस्तिकाय रूप अर्थों का वर्णन किया है, अतः आप पंचार्थवर्णक कहलाते हैं।

**76. सांख्य**—

**सांख्यः समीक्ष्यः कपिलः पंचविंशतितत्त्ववित्।**

**व्यक्ता व्यक्तज्ञ विज्ञानी ज्ञानचैतन्य भेददृक्॥116॥**

संख्या अर्थात् गणना किये जाने पर ईश्वर के अन्वेषण किये जाने पर आदि में, मध्य में या अन्त में आप ही प्राप्त होते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कोई परमेश्वर की गिनती में नहीं आता, अतः आपको लोग सांख्य कहते हैं।

**77. समीक्ष्य**— आप सम्यक् अर्थात् अच्छी तरह ईक्ष्य कहिए देखने के योग्य हैं, अतः समीक्ष्य कहलाते हैं अथवा समी कहिए समभाव वाले योगियों के द्वारा

ही आप ईक्ष्य हैं, दृश्य हैं, अन्य के अगोचर हैं, अतएव समीक्ष्य कहे जाते हैं।

**78. कपिल**— कपि अर्थात् बन्दर के समान चंचल मन को जो लावे अर्थात् वश में करें, आत्मा में स्थापित करे, उसे कपिल कहते हैं, अथवा 'क' अर्थात् परब्रह्म को भी जो लावें उसे कपिल कहते हैं। आपने अपने ध्यान के बल से परमब्रह्म स्वरूप प्राप्त किया है और जीवात्मा से परमात्मा बने हैं अतः आप कपिल कहलाते हैं।

**79. पंचविंशति तत्त्ववित्**— अहिंसादि पाँचों ब्रतों को 25 भावनाओं के तत्त्व अर्थात् रहस्य को जानने के कारण अथवा आस्रव के कारणभूत सम्यक्त्व क्रिया आदि 25 क्रियाओं के स्वरूप को हेयोपादेय रूप से जानने के कारण आप पंचविंशति तत्त्ववित् कहलाते हैं। सांख्य लोग प्रकृति, महान्, अहंकार आदि 25 तत्त्वों को मानते हैं और उन्हें जानने के कारण कपिल को पंचविंशति तत्त्ववित कहते हैं।

**80. व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानी**— व्यक्तज्ञ अर्थात् इन्द्रियों के गोचर ऐसे संसारी जीव और अव्यक्तज्ञ अर्थात् इन्द्रियों के अगोचर ऐसे सिद्ध जीव, उन दोनों के अन्तर को आप भली-भौति जानने वाले हैं, इसीलिए आप व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानी कहलाते हैं। सांख्य मत में प्रकृति से उत्पन्न होने वाले 24 तत्त्वों में से कुछ को व्यक्त और कुछ को अव्यक्त माना गया है और आत्मा या पुरुष को ज्ञाता माना गया है। कपिल उन सबके विवेक या भेद को जानता है, इसलिए उसे व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानी कहते हैं।

**81. ज्ञान चैतन्य भेददृक्**— ज्ञान के 5 भेद हैं और चेतना के ज्ञान चेतना, कर्म चेतना और कर्मफल चेतना ये तीन भेद हैं। केवली भगवान् के ज्ञान चेतना ही होती है। स्थावर जीवों के कर्मफल चेतना ही होती है। त्रस जीवों के कर्म चेतना और कर्मफल चेतना ये दो होती हैं। आप ज्ञान और चैतन्य अर्थात् चेतना के भेदों या उनके पारस्परिक सम्बन्ध के यथार्थ दर्शी हैं, अतः ज्ञान चैतन्य भेददृक् कहलाते हैं।

विभिन्न भारतीय वाङ्मय के अध्ययन से सिद्ध होता है कि ऋषभदेव एक महान् धर्म, समाज, शिक्षा, कला, राजनीति, जीवन निर्वाह प्रणाली के समर्थ, अविष्कारक, संस्थापक, प्रचारक, प्रसारक थे। आदिनाथ भगवान् का व्यापक कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण इहलोक, परलोक, ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता, संस्कृति, व्यक्ति-समष्टि में था। भोगभूमि के अवसान के पश्चात् कर्मभासि के प्रारम्भ के समय में जो जटिल

परिस्थितियाँ मनुष्य समाज के समुख आई थीं, उनको आदिनाथ ने स्वप्रज्ञा से समाधान करके एवं उचित मार्ग समाज को दृष्टिगोचर कराकर समाज सुधार करके कर्मभूमि की व्यवस्था की, स्थापना की थी। यौवनावस्था में स्वयं समाज नेता (राजा) बनकर तथा सर्व सन्यास ब्रत धारण कर केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् मोक्षमार्ग का आविष्कार—साक्षात्कार, संस्थापना एवं प्रचार करके विश्व को विभिन्न नवीन विचारधारा एवं नवीन जीवन पद्धति देने के कारणों से वे आदि ब्रह्मा रूप में प्राप्यात हुए। इसलिए आदिनाथ भगवान् प्रजापति, ब्रह्मा, सुष्टिकर्ता, विधाता कहलाये।

असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि जीवन निर्वाह प्रणाली बताने से, राज्य शासन काल में प्रजाओं को न्यायनीति से पालन करने से तथा तीर्थकर अवस्था में चतुर्विध संघ एवं द्वादशविध गणों को परिचालन—संचालन करने के कारण पालनकर्ता विष्णु स्वरूप हुए।

कर्मभूमि के संक्रमण काल में भयभीत प्रजाओं को उचित मार्ग दिखाकर उनका भय नष्ट करने के कारण, राजा बनकर न्यायानुशासन से अन्याय का निरासन करने से, निर्गन्ध मुनि बनकर रत्नत्रय रूपी त्रिशूल से मोहांधकार रूपी राक्षस का संहार करने से, देवाधिदेव तीर्थकर बनकर दिव्य अमृतमयी वाणी से, भव्यों के कर्म कलंक को नाश करने से तथा अन्त में द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रूपी संसार को विध्वंस करके सदाशिव रूपी सिद्ध अवस्था प्राप्त करने के कारण महेश (रुद्र) स्वरूप हुए।

### वृषभदेव बनाम वृषध्वज (महादेव)

जैन दर्शन तथा हिन्दुओं के पुराण भागवत में वर्णित वृषभदेव तथा हिन्दु धर्म के प्रसिद्ध देव वृषध्वज (महेश) में एक आश्चर्यजनक साम्य है। हिन्दु धर्मानुसार वृषभदेव का लाज्जन (चिह्न) वृषभ है। वृषभ का अन्य अर्थ ‘धर्म तथा श्रेष्ठ’ होता है। जो धर्म में श्रेष्ठ है, वही वृषभ है।

हिन्दु धर्मानुसार महेश का निवास स्थान कैलाश पर्वत है। जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान का साधना, विहार एवं परिनिर्वाण स्थल कैलाश पर्वत है।

हिन्दु धर्मानुसार महादेव त्रिशूलधारी हैं एवं त्रिशूल के माध्यम से अंधकासुर का वध किया था। जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र रूपी त्रिशूल (रत्नत्रय) से मोहांधकार रूपी वैरी का विध्वंस

किया था।

हिन्दु धर्म में वर्णित है कि महेश के अर्धअंगी स्त्री (पार्वती) और अर्धअंश पुरुष (ईश्वर) स्वरूप हैं। असलिए महेश अर्धनारीश्वर स्वरूप हैं। जैन धर्मानुसार वृषभदेव ने घातिकर्म रूपी अर्ध अंतरंग शत्रुओं को विध्वंश करके ईश्वरत्व (तीर्थङ्करत्व) अवस्था को प्राप्त किया था, इसलिए अर्धनारीश्वर कहलाये। अर्धनारीश्वर का अर्थ ‘जीवन्मुक्त परमात्मा’ होता है।

हिन्दु धर्मानुसार महादेव ने कामदेव को तृतीय नेत्र से भस्म किया था। जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् ने आध्यात्मिक ज्ञानरूपी तृतीय नेत्र से अंतरंग कामवासना को नष्ट किया था। महादेव का तीसरा नेत्र जैन धर्मानुसार अन्तर्दृष्टि, आध्यात्मिक ज्ञान या केवलज्ञान है।

हिन्दु धर्मानुसार महेश विशेषतः शमशान में संचार करते थे। जैन धर्मानुसार वृषभदेव ध्यान साधना के लिए एकान्त वनप्रदेश, शमशान में भी रहते थे।

हिन्दु धर्मानुसार रुद्र विभूति धारण करते थे। जैन दर्शनानुसार आदिनाथ भगवान् आध्यात्मिक विभूति के धारक थे।

महादेव भूतनाथ थे। जैन दर्शनानुसार आदिनाथ, भूत अर्थात् प्राणी मात्र के उद्धारक तथा उपदेशक होने के कारण प्राणियों के उपकारक (भूतनाथ) थे।

हिन्दु धर्मानुसार ईश्वर जटाधारी थे। जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् दीक्षा के अनन्तर 6 महीने तक योग साधना धारण करने के कारण केशलोंच नहीं कर पाये थे। इसलिए केश बढ़कर जटारूप हो गये थे।

हिन्दु धर्मानुसार महेश ‘महादेव’ हैं। जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् चतुर्निकाय देव एवं 100 इन्द्रों से पूजित होने के कारण महादेव हैं।

हिन्दु धर्म में से महेश को शिवशंकर कहते हैं। आदिनाथ भगवान् समस्त कर्मों को नाश करके शाश्वतिक मोक्षपद प्राप्त करने के कारण शिव (शाश्वतिक, मंगल) हैं। शङ्कर (पवित्र करने वाले) हैं।

उपरोक्त अनेक सन्दर्भों में एक विचित्र साम्य दृष्टिगोचर होता है। इसमें जो विषमता है, वह केवल वर्णनात्मक प्रणाली के कारण है। हिन्दु धर्म में जो महेश का वर्णन है, वह स्थूल बाह्य अलंकार है। जैन दर्शन में जो वर्णन है, वह सूक्ष्म, अंतरंग एवं आध्यात्मिक यथार्थपरक है। प्राचीनकाल में कवि, लेखक, उपदेशक ऋषि जटिल गूढ़ रहस्य को साधारण जन्य के बोधगम्य के लिये रूपक अलंकारात्मक

भाषा में आदर्श को प्रतिपादित करते थे। जैन दर्शन में जो ऋषभदेव का सूक्ष्म आध्यात्मिक यथार्थ वर्णन है, वही सत्य स्वरूप का वर्णन रूपक भाषा में, हिन्दु धर्म में किया गया है। अतः वृषभदेव ही वृषध्वज (वृषभचिह्नित) हैं। वृषभ लाजिछत वृषभदेव ही वृषध्वज सिद्ध होते हैं परन्तु कालक्रम से दोनों में सत्य व आदर्श में भिन्नता होते-होते अन्ततः पूर्ण भिन्न हो गया है।

### अभ्यास प्रश्न (परि. 10)

1. ऋषभ देव का गर्भकल्याणक कब हुआ था?
2. ऋषभ देव का जन्म कब एवं कहाँ हुआ था?
3. ऋषभ देव के माता-पिता का क्या नाम है?
4. ऋषभ देव का वंश क्या था?
5. ऋषभ देव का वैराग्य का कारण क्या है?
6. ऋषभ देव के सह दीक्षित कितने थे?
7. आदिनाथ का छद्मस्थ काल कितना था?
8. आदिनाथ ने ब्रात्सी एवं सुंदरी को क्या शिक्षा दी थी?
9. आदिनाथ आदि ब्रह्मा क्यों कहलाए?
10. आदिनाथ भगवान के संघ का परिचय दीजिए।
11. आदिनाथ भगवान् के विभिन्न रूपों का परिचय दीजिए।
12. ऋषभदेव एवं वृषभध्वज (शिव) का तुलनात्मक वर्णन करो।

### कुदरती टाईम टेबल वाली चिड़िया

रीफ हेरॉन नामक चिड़िया जो ग्रेट बारियार रीफ पर सीपियों आदि का आहार करती है, प्रतिदिन ऑस्ट्रेलिया की मुख्य भूमि से 30 मील की उड़ान भरकर रीफ (समुद्री चट्टान) पर ठीक उसी समय पहुँचती है जब पानी घट रहा होता है, यद्यपि ज्वार-भाटे का समय प्रतिदिन 45 मिनट आगे-पीछे हो जाता है।

— आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

### परिच्छेद-11

## 24वें अन्तिम तीर्थकर वर्धमान

प्रिय बच्चों! अभी तक आप लोगों ने आदि तीर्थकर के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त कर ली। इस काल के अन्तिम तीर्थकर महावीर भगवान् के बारे में जानकारी दे रहा हूँ। जिनका प्रचार भारतवर्ष में सबसे अधिक है। इसका कारण यह है कि महावीर भगवान् अन्य तीर्थकरों की अपेक्षा काल की दृष्टि से अधिक निकट है। अभी उनके ही शासन काल में हम लोग निवास कर रहे हैं। इसका मतलब यह नहीं कि अन्य तीर्थकर का महत्व इनसे कम है। महावीर भगवान् ने धर्म के लिये जो कुछ किया था उससे कुछ कम अन्य तीर्थकरों ने नहीं किया था। भारतीय विद्वान् के साथ-साथ कुछ विदेशी मानते हैं कि जैन धर्म हिन्दु धर्म या बौद्ध धर्म की एक शाखा है एवं महावीर भगवान् ने जैन धर्म की स्थापना की थी। प्रिय बच्चों! यह धारणा कोरी कल्पना है एवं भूल से भरी है। क्योंकि अभी-अभी आपने अध्ययन भी किया कि महावीर से कई करोड़ों, अरबों वर्ष पहले इस युग के प्रथम तीर्थकर आदिनाथ हुये एवं उनके बाद भी मध्य में 22 तीर्थकर हुये। आदिनाथ तीर्थकर के बारे में विशेष जानकारी के लिए लेखक द्वारा रचित ‘युग निर्माता ऋषभदेव’, तीर्थकरों के बारे में विशेष जानकारी के लिये ‘क्रान्ति के अग्रदूत’ और इतिहास की जानकारी के लिये ‘विश्व इतिहास’ का अध्ययन करें।

23वें तीर्थकर पाश्वनाथ के मोक्ष जाने के 250 वर्ष के बाद एक महान् जीव पुष्पोत्तर विमान से आषाढ़ सुदी पष्ठी को च्युत होकर कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ की रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) के गर्भ में आया। वह महान् आत्मा आगे जाकर महावीर भगवान् बना। जब यह महान् आत्मा गर्भ में आया इसके छः महीने पहले ही इन्द्र ने कुबेर को आज्ञा देकर रत्नवृष्टि करवायी। यह रत्नवृष्टि लगातार जन्म तक होती रही। महावीर भगवान् ने चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र में जन्म लिया। वह दिन इसा पूर्व 599 या विक्रम पूर्व 542 था। इनका क्षत्रिय नाथ(ज्ञातु) वंश था। इन्द्र ने जन्माभिषेक के समय में इनके अंगूठे में सिंह का चिह्न देखकर इनका लाज्जन सिंह रखा। इनकी पूर्ण आयु 72 वर्ष की थी जिसमें से कुमार काल 30 वर्ष का था। इनका 7 हाथ प्रमाण शरीर स्वर्ण वर्ण

का था।

महावीर भगवान् को जातिस्मरण होने के कारण ये संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो गये। इसी कारण वे न विवाह बन्धन में पड़े और न राज्य शासन ही किया। जब वे विरक्त हो गये तब लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी सराहना की। महावीर भगवान् को मनुष्य और देव एक सुन्दर पालकी में बैठाकर नाथ वन में ले गये। मंगसिर कृष्ण दशमी तिथि तथा उत्तरा नक्षत्र के अपराह्नकाल में एक दिन का उपवास लेकर 'नमः सिद्धेभ्यः' का ध्यान करते हुए पंचमुष्ठी केशलोंच करके एकाकी दीक्षा ले ली।

यह दीक्षा दिवस 569 ई. पूर्व या 512 विक्रम पूर्व है। वे बारह वर्ष तक अखंड मौन लेकर आत्मसाधना में लीन रहे। उन्हें भी पार्श्वनाथ के समान अनेक उपसर्ग हुये।

आत्मध्यानी महावीर ध्यान से विचलित नहीं हुए। इस प्रकार 12 वर्ष की कठोर साधना के फलस्वरूप उन्हें ऋजुकूला नदी के तीर पर वैशाख शुक्ला दशमी के दिन तथा मध्य नक्षत्र में लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ। यह दिन ई. पूर्व 557 या विक्रम पूर्व 500 था। उस कल्याणक को मनाने के लिए चतुर्निकाय देव आए और 1 योजन प्रमाण समवशरण की रचना की। इनके समवशरण में मनुष्य एवं देव के साथ पशु-पक्षी भी आकर धर्म श्रवण करते थे। इनकी धर्म सभा में इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधर थे। इनके समवशरण में 300 पूर्वधर, 9900 शिक्षक, 1300 अवधिज्ञानी, 700 केवली, 800 विक्रियाधारी, 500 विपुलमति, 400 वादी मुनि थे। इस प्रकार पूर्ण ऋषियों की संख्या 14000 थी। आर्थिकाओं की संख्या 36000 थी। आर्थिकाओं में मुख्य आर्थिका चन्दना थी। एक लाख श्रावक तथा तीन लाख श्राविकायें थीं।

महावीर भगवान् तीस वर्ष तक अंग, बंग, कलिंग, मगध, सौराष्ट्र, गुजरात आदि देश में विहार करते हुए 718 भाषा में जनता को सम्बोधित करते थे। जब वे विहार करते थे तब देव लोग उनके चरण के नीचे स्वर्ण कमल की रचना करते थे। महावीर भगवान् को जब केवलज्ञान हुआ तब उनका शरीर परमौदारिक शरीर हो गया। परमौदारिक का अर्थ है शरीर के रक्त, मांस, हड्डी आदि सप्त धातु एवं मल परिवर्तित होकर शुद्ध स्फटिक रूप में परिणमन कर लेना। केवलज्ञान होते ही वे पाँच हजार धनुष भृपुष्ठ से ऊपर उठ गये थे। उपदेश, विहार आदि

5000 धनुष ऊपर ही होता था। इनके समवशरण में गृह्यक यक्ष, सिद्धायनी यक्षिणी भक्तिभाव से रहते थे। मोक्ष जाने के दो दिन पूर्व की उपदेश देना बन्द कर दिया और समवशरण का विघटन भी हो गया था। वे पावापुरी के पद्म सरोवर के मध्य भाग में स्थित हुये। ई. पूर्व 527 या विक्रम पूर्व 470 कार्तिक कृष्ण अमावस्या के प्रत्युष काल के स्वाति नक्षत्र में चारों अघाति कर्मों को नष्ट करके मोक्ष पधारे। जब महावीर भगवान् को मोक्ष प्राप्त हुआ तब गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। मोक्ष कल्याण एवं गणधर का केवलज्ञान उत्सव मनाने के लिये दीपमालिका प्रज्वलित कर उत्सव मनाया। तब से ही दीपावली उत्सव प्रचलित हुआ। वर्तमान में जैन व अजैन में यह उत्सव मनाया जाता है।

गौतम सिद्धार्थ (बुद्ध देव) का जन्म ईसा पूर्व 567 में होने के कारण भगवान् महावीर उनके समकालीन होने पर भी उनसे ज्येष्ठ थे। महावीर का जन्म, दीक्षा, केवलज्ञानादि बुद्ध से पहले होने के कारण स्वयं बुद्ध देव ने भी अनेक बार अपने शिष्यों के समक्ष महावीर भगवान् को सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी कहकर वर्णन किया, जिसका वर्णन त्रिपिटिका व बौद्ध साहित्य में अनेक जगहों में पाया जाता है। स्वयं बुद्ध द्वारा महावीर भगवान् को एक स्वतंत्र धर्माचार्य, तीर्थकर, धर्म प्रवर्तक मानने से यह सिद्ध होता है कि जैन धर्म एक स्वतन्त्र धर्म है न कि हिन्दु या बौद्ध धर्म की शाखा।

वर्तमान में भी अनेक विद्वान अजैन व वैदेशिक विद्वान भी जैन धर्म को प्राचीन एवं स्वतन्त्र धर्म मानने लगे हैं जिसका प्रमाण बौद्ध साहित्य, हिन्दु साहित्य, जैन साहित्य व प्राचीन अवशेष हैं।

### अभ्यास प्रश्न (परि. 11)

1. महावीर भगवान् का जन्म कहाँ हुआ था?
2. महावीर के माता-पिता के नाम क्या हैं?
3. महावीर कौन से वंश के थे?
4. महावीर की कितनी आयु थी?
5. महावीर ने कितने वर्ष तक तप किया था?
6. महावीर को कहाँ एवं कब केवलज्ञान प्राप्त हुआ था?
7. महावीर के कितने श्रावक एवं श्राविकाएँ थीं?

8. महावीर के मुख्य गणधर कौन थे ?
9. महावीर के समान ही ज्ञानी उनके संघ में कितने थे ?
10. महावीर के संघ में कितनी आर्थिकाएँ थीं ?
11. महावीर के संघ में कितने शिक्षक थे ?
12. दीपावली कब से एवं क्यों मनाई जाती है ?

### वीतराग स्तोत्रम्

शिवं शुद्धं बुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बंधुर्न कर्ता न कर्मी।  
न अड्गं न सड्गं न स्वेच्छा न कायं, विदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥१॥

न बन्धो न मोक्षो न रागादि दोष, न योगो न भोगो न व्याधिर्न शोकः।  
न कोपो न मानो न माया न लोभः, विदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥२॥

न हस्तौ न पादौ न ग्राणं न जिह्वा, न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।  
न स्वामी न भूत्यो न देवो न मर्त्यः, विदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥३॥

न जन्म न मृत्यु न मोहो न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न काश्यं न तन्द्रा।  
न स्वेदो न खेदो न वर्णो न मुद्रा, विदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥४॥

त्रिदं त्रिखंडं हरं विश्वनाथम्, हृषीकेष विघ्स्तकर्मादिजातम्।  
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रम्, विदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥५॥

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढ़ो, न स्वेदो न भेदो न मूर्ति न स्नेहः।  
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तन्द्रा, विदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥६॥

नायं न मध्यं नान्तं न चान्त्य्, न द्रव्यं न क्षेत्रो न कालो न भावः।  
शिष्यो गुरुर्नपि हीनो न दीनः, विदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥७॥

इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न वैत्य स्वरूपी।  
न चान्यो न भिन्नो न परमार्थमेकम्, विदानन्दं रूपं नमो वीतरागम्॥८॥

आत्माराम गुणाकरं गुणनिधिं चैतन्यरत्नाकरम्,  
सर्वे भूतगतागते सुखं दुःखे ज्ञाते त्वयि सर्वगे।  
त्रेतोक्ष्याधिपते स्वयं स्वमनसा ध्यायंति योगीश्वराः।  
वं दे तं हरिवंशहर्षहृदयं श्रीमान् हदाभ्युद्यताम्॥९॥

### परिच्छेद-12

## अथवैज्ञानिकज्ञासा : आध्यात्मिकसमाधान

प्रश्न-1 - (जिज्ञासु) धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर- (कनकनन्दी) वस्तु स्वभाव को धर्म कहते हैं या जिससे जीव का सर्वांगीण विकास हो उसे धर्म कहते हैं; अथवा जिससे वास्तविक शाश्वतिक सुख-शांति मिले उसे धर्म कहते हैं; या अहिंसादि पाँचों व्रतों को धर्म कहते हैं; अथवा उत्तमक्षमादि दस धर्मों को धर्म कहते हैं। रत्नत्रय को भी धर्म कहते हैं। जिससे व्यक्ति से लेकर समाज, राष्ट्र, विश्व में सुख-शांति की स्थापना हो; प्रेम, मैत्री, समता, संगठन, एकता का साम्राज्य हो उसे धर्म कहते हैं। उपरोक्त धर्म की विभिन्न परिभाषायें होते हुए भी संपूर्ण परिभाषाओं के रहस्य का सत्य-तथ्य, लक्ष्य एक समान है।

प्रश्न-2 (जि.) विज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर- (क.) विशेष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं; या विधिवत् ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। प्रकृति का क्रमबद्ध, व्यवस्थित अध्ययन या शोध-बोध, खोज/आविष्कार को भी विज्ञान कहते हैं।

प्रश्न-3 (जि.) विज्ञान एवं धर्म में क्या अन्तर है ?

उत्तर- (क.) सत्य के शोध-बोध की दृष्टि से विज्ञान एवं धर्म में कोई अन्तर नहीं हैं परंतु आधुनिक विज्ञान अभी पुर्ण सत्य को शोध-बोध एवं उपलब्ध नहीं कर पाया है। परंतु वास्तविक सच्चा धर्म एवं धार्मिक महापुरुष सम्पूर्ण वास्तविक सत्य का शोध-बोध एवं उपलब्धि कर लेते हैं इसलिए धर्म पूर्ण सत्य है एवं विज्ञान आंशिक सत्य है।

प्रश्न-3 (जि.) परन्तु धर्म के नाम पर अनेक मिथ्या परम्परायें, अंधविश्वास, मुळ मान्यतायें, भेदभाव, उँचनीच, कटुता, बलिप्रथा, हिंसा आदि भी पायी जाती है क्या यह वास्तविक धर्म है ?

उत्तर- (क.) नहीं! यह कदापि धर्म नहीं हो सकता है। यह तो अधर्म है; धर्म के नाम पर कलंक है। भले ही ऐसी परम्परायें धर्म के नाम पर स्वयं को धार्मिक जाताने, बताने और सिद्ध करने वाले करते हों, करवाते हों या उसे सिद्ध करने के लिए तर्क, शास्त्रों का आधार देते हों तो भी यह सब अधर्म है। क्योंकि यह सब धर्म के स्वरूप एवं उद्देश्य से विपरीत है।

प्रश्न-4 (जि.) तब तो जो कुछ वैज्ञानिक, समाजसुधारक, राजनेता, साधुसंत, विद्वान् अंधविश्वास से युक्त धर्म को नहीं मानते हैं वह सही है?

उत्तर- (क.) बिल्कुल सही हैं। उन्हें मानना भी नहीं चाहिए। इसके विरुद्ध में उसे परिमार्जित करने के लिए समग्रता से क्रांति करनी चाहिए। इसलिए तो बलिप्रथा का विरोध महात्मा बुद्ध और महावीर भगवान् आदि ने किया, सतीदाह प्रथा का विरोध राजा राममोहनराय ने किया, दास प्रथा का विरोध अब्राहिम लिंकन, महात्मा गाँधी आदि ने किया, मजदूर एवं गरीबों के शोषण का विरोध कार्लमार्क्स, लेनिन आदि ने किया, टोना, टोटका, भूत-पलीत, देव-देवी के प्रकोप से रोग होना आदि मिथ्या मान्यताओं का विरोध वैज्ञानिकों ने किया जो उचित है, स्वागत योग्य है, कल्याणकारी है, ग्रहणीय है। इसलिए तो वैज्ञानिक युग में अनेक धार्मिक अंध विश्वास करे हैं, छेंटे हैं, कम हुए हैं। धर्म का वैज्ञानिक विश्लेषण भी हो रहा है।

प्रश्न-6 (जि.) गुरुदेव (कनकनंदीजी) इसीलिए क्या आप वैज्ञानिक धर्म को श्रेष्ठ मानते हैं?

उत्तर- (क.) हाँ। मैं इसीलिए वैज्ञानिक धर्म को श्रेष्ठ मानता हूँ। मेरी दृष्टि में जो केवल वैज्ञानिक लोग शोध-बोध करते हैं वही केवल विज्ञान नहीं है, परंतु जो सत्य तथ्य पूर्ण हो, उपकारक हो, उदार एवं उदान्त भावों से युक्त हो, अनेकांत एवं सापेक्ष दृष्टिकोण से युक्त हो उसी को मैं वैज्ञानिक धर्म मानता हूँ। केवल भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणीविज्ञान, मनोविज्ञान को ही मैं विज्ञान नहीं मानता हूँ। इसे ज्यादा से ज्यादा विज्ञान का एक बहुत छोटा अंश मानता हूँ। इसके साथ-साथ जो वैज्ञानिक लोग शोध-बोध एवं खोज करते हैं उसे ही मैं विज्ञान नहीं मानता हूँ। यहाँ तक कि वैज्ञानिक लोग जिसे नहीं मानते हैं जिसका शोध-बोध नहीं कर पाये हैं, वहाँ तक कि वे उसका विरोध करते हैं किन्तु सत्य तथ्य से युक्त है उसे ही मैं विज्ञान मानता हूँ। यदि वैज्ञानिक लोगों के मानने पर ही हम उसे सत्य मानते हैं तो यह भी हमारा एक अंधानुकरण है।

प्रश्न-7 (जि.) आपकी धारणा विज्ञान व वैज्ञानिकों के प्रति ऐसी क्यों हैं?

उत्तर- (क.) क्योंकि मैंने जो विद्यार्थी जीवन से लेकर अभी तक जो कुछ अध्ययन किया, देखा, सुना, परीक्षण-निरीक्षण किया उसके आधार पर मैं इस सुनिश्चित धारणा पर पहुँचा हूँ कि आधुनिक विज्ञान एवं वैज्ञानिक लोग बालक के समान जिज्ञासु एवं सत्य के शोधक-बोधक हैं परंतु वे पूर्ण सत्य को न जान

पाये न मान पाये न प्राप्त कर पाये हैं।

प्रश्न-8 (जि.) गुरुदेव ! विज्ञान पूर्ण सत्य तक क्यों नहीं पहुँच पाया है?

उत्तर- (क.) विज्ञान सत्य की खोज के लिए सत्य के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है परंतु अभी तक पूर्ण सत्य में नहीं पहुँचा है। कारण यह है कि विज्ञान केवल भौतिक साधन, यंत्रों के माध्यम से भौतिक जगत् का ही परीक्षण-निरीक्षण कर रहा है और इस परीक्षण निरीक्षण से जो सत्य पाता है उसी को मानता है। परंतु केवल भौतिक तत्व ही सत्य नहीं है किंतु भौतिक से अभौतिक सत्य अनंतगुणित हैं। और वह अभौतिक सत्य भौतिक यंत्र एवं साधनों से बोधगम्य नहीं है। इसके साथ-साथ इंद्रियों की शक्ति, भौतिक यंत्रों की क्षमता, सीमित होने के कारण इस सीमित शक्ति एवं क्षमता से अनंत सत्य-तथ्य का परिज्ञान नहीं हो सकता है।

प्रश्न-9 (जि.) गुरुदेव! कुछ ऐसे उदाहरण देकर समझायें कि विज्ञान पूर्ण सत्य तक नहीं पहुँच पाया है, और विज्ञान परिवर्तन शील आंशिक सत्य है?

उत्तर- (क.) ऐसे तो हजारों उदाहरण हैं परंतु कुछ प्रसिद्ध उदाहरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। पहले विज्ञान प्रकाश को केवल ऊर्जा (शक्ति) मानता था। परंतु आगे जाकर सिद्ध हुआ कि प्रकाश भी प्रोटोन कणों का समूह है। इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन, प्रोटोन के समूहरूप स्कन्ध को पहले अविभाज्य अणु मानते थे। लेकिन वह खण्डित होता जा रहा है और क्वार्क तक पहुँच गया है आगे और भी खण्डित होने वाला है। डार्विन के विकासवाद को पहले सत्य मानते थे अभी वह बहुत अंशों में असत्य सिद्ध हो गया है। पहले एक सूर्य मानते थे अभी अनेक सूर्य मानने लगे हैं। पहले ब्रह्माण्ड सृष्टि की जो कालावधि मानते थे, वह कालावधि अभी और बढ़ती जा रही है। अभी तो अनेक वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड-सृष्टिवाद को नहीं मानते हैं पहले पृथ्वी को ही भ्रमणशील मानते थे एवं सूर्य को स्थिर मानते थे परन्तु अभी आइन्सटीन के सापेक्ष सिद्धान्तानुसार कथंचित् पृथ्वी भी स्थिर है और सूर्य भी भ्रमणशील है। विज्ञान के अनुसार मौलिक तत्व कभी 105 हो जाते हैं तो कभी 85 हो जाते हैं। इसमें भी कोई निश्चितता नहीं है। ये वस्तुतः मौलिक तत्व नहीं है परन्तु यौगिक तत्व हैं। विज्ञान के अनुसार भी उसके मूल तत्व इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन, प्रोटोन हैं। जैन धर्म के अनुसार ये सब सूक्ष्म, शुद्ध, अविभाज्य अणु के समूह स्वरूप स्कन्ध हैं। विशेष जानकारीके लिए मेरा 'विश्व विज्ञान रहस्य', 'विश्व द्रव्य विज्ञान' 'स्वतन्त्रता के सूत्र', 'प्रवचनसार' आदि ग्रंथों का आप लोगों को अध्ययन करना चाहिए।

परिच्छेद-13

## -Quotations-

1. A man lives in deeds and not in years.
2. Knowledge is power.
3. Child is the father of man.
4. Faith is the force of life.
5. Time is life.
6. Knowledge is the treasure but practice is the key to it.  
(Thomas fulter)
7. The truth that needs proof is only half truth.
8. By education & means the all-round drawing out of the best in child and man in mind body and spirit.(M. Gandhi)
9. Idleness is the nest in which mischief lays its eggs.  
(Brown)
10. कथनी करनी भिन्न जहाँ धर्म नहीं पाखण्ड वहाँ।
11. यः आत्मवित् स सर्ववित्।
12. An honest God is the noblest work of man.
13. Beauty is truth & truth is beauty; that is all you know on earth, and all you need know.
14. सच्चं लोगमि सारभूयं।  
सत्य विश्व में सारभूत है।
15. तं सच्चं खु भगवं।  
भगवान निश्चय से सत्य स्वरूप है।
16. Truth is God & God is truth
17. उन्नत मानस्य यस्य तस्य भाग्यं समुन्नतम्।
18. सा विद्या या विमुक्तये।  
जिससे स्वातन्त्र्य मिलता है, वही विद्या है।
19. पन्ना समिक्खए धर्मं तत्त्वमत्तम् विणिच्छयं।

- प्रज्ञा से सत्य असत्य की परीक्षा करके धर्म की समीक्षा करनी चाहिए।
20. युक्ति भावं भवेत् तत्त्वम्। न तत्त्वं युक्तिवर्जितम्।
21. Healthy mind in a healthy body.
22. Our body is what we eat.
23. Diet Cures more than Doctors.
24. The essence of education is that it be religious.  
(A.N. Whitehead)
25. Action is the end of thought (रोम्यों रोलों)
26. Money is not power, but goodness and holiness are powers.
27. Every body's friend's is no body.
28. If wealth is lost, nothing is lost. If health is lost, something is lost. But if character is lost every thing is lost.
29. Love your enemies, bless them that curse you, do good to them that hate you, and pray for them which spitefully use you, and persecute you.
30. Lay not up for yourself treasures upon earth. Lay up for yourself treasures in heaven. Where your treasures are there will your heart be also.
31. आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥
32. Do not practice unto others what is not agreeable to you.
33. Know Thyself.  
आत्मनः विद्धिः।  
स्वयं को पहिचानिए।
34. काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गंछति धीमताम्  
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥
35. God is gold, but gold is not God.
36. Good man is God, bad man is Dog.
37. क्षमातुल्यं तपो नास्ति, न संतोषात्परं सुखम्।  
न त्रृष्ण्या परो व्याधिः न च धर्मोदयापरः॥

- क्षमा के समान तप नहीं, संतोष से अधिक सुख नहीं, तृष्णा के समान अन्य व्याधि नहीं, दया से अधिक धर्म नहीं।
38. द्रव्य पाने की अगर भगवन्, मुझे दरकार हो।  
द्रव्य को धर दूँ चरण में धर्म का उपकार हो॥
39. त्वमेव माता च पिता त्वमेव।  
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव॥  
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव।  
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥
40. सर्ववेदमयः ज्ञानं सर्वं धर्ममयः द्रव्यः।  
सर्वं तीर्थमयः भावः सर्वं देवमयः ब्रह्मः॥
41. सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।  
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥
- सत्य से पृथ्वी धारण करती है, सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से वायु बहती है, सब सत्य में ही प्रतिष्ठित है।
42. चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे।  
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः॥
43. As you sow so you reap.
44. अविवेकः परमापदां पदम्।  
अविवेक परम आपत्ति का स्थान है।
45. गुणलुद्ध्याः स्वयमेव सम्पदः।  
गुणानुराग स्वयं ही सम्पत्ति है।
46. यद्यदाचरति श्रेष्ठः स्तत्तदेवेतरो जनः॥  
बड़े मनुष्य जिस प्रकार आचरण करते हैं, अन्य जन उस प्रकार आचरण करते हैं।
47. महाजन येन गता संपथाः।  
महापुरुषों का आचरण ही दूसरों के लिए आदर्श है।
48. आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिं सत्यं शुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः॥  
As you eat, so you think, as you think, so you become.
49. गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, घड़ घड़ काढ़े खोट।

- अन्तर हाथ पसारिके ऊपर मारे चोट॥
50. शत्रोरपि गुणाग्राह्या दुर्गुणा न गुरोरपि।  
सर्वदा ते परित्याज्या निष्पक्षा गुण कांक्षिभिः॥  
शत्रु से भी गुण ग्रहण करना चाहिये। निष्पक्षपाती गुणग्राही व्यक्ति को गुरु से भी दुर्गुण ग्रहण नहीं करना चाहिये। सर्वदा दुर्गुण को त्याग करना चाहिये।
51. अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम्।  
परोपकाराय पुण्याय पापाय पर पीडनम्॥
52. राम गये रावण गये, गये तीर्थकर।  
जो आत्मा में स्थिर भये, ताके न हेर फेर॥
53. मंगलं भयवदो आदा, मंगलं अहिंसा धम्मो।  
मंगलं अणेयंत धम्मो, मंगलं जीव सहावो॥
54. The path of religion is the path of happiness & peace.
55. विवेक ही विश्व में प्रथम एवं प्रधान निधि है।

## शिविर के अंतर्गत योगाभ्यास करते हुए शिविरार्थी



परिच्छेद-14

# सरस्वती पूजा

दोहा

जनम जग मृत्यु, क्षय करै, हरे कुनय जड़रीति।

भव-सागरसों ले तिरै, पूजै जिन वच ग्रीति॥१॥

ओं हाँ श्री जिन-मुखोद्भव – सरस्वत्यै पुष्टांजलिः।

क्षीरोदधि गंगा विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखसंगा।

भरि कंचनज्ञारी, धार निकारी, तृष्णा निवारी, हित चंगा॥

तीर्थकर की ध्वनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई॥

सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन-मानी पूज्य भई॥

ओं हाँ श्री जिन-मुखोद्भव – सरस्वतीदेवै जलं निर्व।॥२॥

करपूर मंगाया चन्दन आया, केशर लाया रंग भरी।

शारद-पद बंदो, मन अभिनंदो, पाप निकंदो दाह हरी॥

तीर्थ। ॥चन्दनम् ॥२॥

सुखदास कमोदं, धारक मोदम् अति अनुमोदं चंदसमं।

बहु भवित्व बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मात ममं॥

तीर्थ। ॥अक्षतान् ॥३॥

बहु फूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनंद रासं लाय धरे।

मम काम मिटायो, शील बढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे॥

तीर्थ। ॥पुष्टं ॥४॥

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सब विध भाया मिष्ठ महा।

पूजै युति गाऊं, प्रीति बढ़ाऊं, क्षुधा नशाऊं हर्ष लहा॥

तीर्थ। ॥नैवेद्यं ॥५॥

कर दीपक-जोतं, तमक्षय होतं, ज्योति उदोतं तुमहि चढ़ै।

तुम हो परकाशक, भरम-विनाशक हम घट भासक, ज्ञान बढ़ै॥

तीर्थ। ॥दीपं ॥६॥

शुभ गंध दशोंकर, पावकमें धर, धूप मनोहर खेवत हैं।

सब पाप जलावे, पुण्य कमावे, दास कहावे सेवत हैं॥

तीर्थ। ॥धूपम् ॥७॥

बादाम छुहारी, लौंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत् हैं।

मन वांछित दाता मेट असाता, तुम गुन गाता, ध्यावत् हैं।

तीर्थ। ॥फलम् ॥८॥

नयनन सुखकारी, मृदु गुनधारी, उज्ज्वल भारी, मालधरी।

शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम मन धारा ज्ञान करै॥

तीर्थ। ॥अर्धम् ॥६॥

जल चंदन अक्षत फूल चरू, अरु दीप धूप अति फल लावै।

पूजा को ठानत जो तुम जानत, सो नर ध्यानत सुखपावै॥

तीर्थ। ॥अर्धम् ॥२०॥

## जयमाला।

सोरथ

ओंकार ध्वनिसार, द्वादशांग वाणी विमल।

नमों भवित्व डर धार, ज्ञान करै जड़ता हैर।

पहलो आचारांग बखानौ, पद अष्टादश सहस प्रमानो।

दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं॥

तीजो ठाना अंग सुजानं, सहस बयालिस पद सरधानं।

चौथे समवयांग निहांर, चौसठ सहस लाख इक धारम्॥

पंचम् व्याख्या प्रज्ञप्ति दरसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।

छठ्ठो ज्ञातृकथा विसतारं, पाँच लाख छप्पन हज्जारं॥

सप्तम् उपासका ध्ययनंग, सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।

अष्टम् अंतकृत दस ईसं, सहस अठाइस लाख तेईसं॥

नवम् अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं।

दशम् प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानव सोल हजारं॥  
 ग्यारम् सूत्र विपाक सु भाखं, एक करोड़ चोरासी लाखं।  
 चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु शाखं।  
 द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इकसौ आठ कोड़ि पद बेदं।  
 अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्या हन हैं।  
 इक सौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।  
 ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने॥  
 कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं।  
 साढ़े इक्कीस श्लोक बताये, एक एक पद के ये गाये॥  
 जा बानी के ज्ञान ते, सूझे लोक - अलोक।  
 'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हूँ धोक  
 ओं हों श्री जिन-मुखोद्भव - सरस्वतीदेवै महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा॥

### गुरु वंदना अष्टक

1. आचार्य गुरुवर सरलं सुशान्तं, विद्याविशारद महाप्रवीणम्।  
 वात्सल्यमूर्तिनिज आत्मलीनं प्रणमामि नित्यं महायतीन्द्रम्॥
2. गम्भीर हृदयं सुसौम्यमूर्तिगुरलराशि विज्ञं सुधीरम्।  
 नित्यं निजात्मनि शमितं कषायं प्रणमामि नित्यं आचार्य वर्य
3. धर्म प्रभावक महिमा विशेष सरल स्वभाव सुखस्य बीजं  
 दुःख निवारक कुशलं सुवैद्यं प्रणमामि नित्यं आचार्य गुरुवर
4. श्रद्धा विभूषित गुण रल सिन्धु चारित्रनिर्मल परं पवित्रम्  
 श्री पुण्य कांति महाप्रभावं प्रणमामि नित्यं आचार्य गुरुवर
5. शिष्योपकारक गुणरलराशि न्याय प्रभाकर निजध्यान लीनं  
 ज्ञान दिवाकर विकास हेतुं प्रणमामि नित्यं आचार्य गुरुवर
6. संसार तारण यान पात्रं सर्वोपकारि करुणा समुद्रम  
 ज्ञान प्रकाशक अनंत सुधीरं प्रणमामि नित्यं आचार्य गुरुवर
7. अनंत ज्ञान परम विशुद्धं अन्तर चक्षु वैराग्य मूर्तिम्  
 प्रशान्तरूपं दुष्कर्महारि प्रणमामि नित्यं आचार्य गुरुवर
8. सिद्धान्तचक्री धर्मप्रभाकर विज्ञान सिन्धु आचार्य गुरुवर  
 पुष्पेण तुल्यं मृदुलं स्वभावं प्रणमामि नित्यं श्री कनकनंदीम्॥



खड़गासन मुद्रा में –

मुनिश्री आज्ञासागरजी, आ. श्री कनकनंदीजी एवं उपाध्याय श्री विद्यानंदीजी



शिविरार्थी विद्यार्थियों का एक विहंगम दृश्य